

## Early Journal Content on JSTOR, Free to Anyone in the World

This article is one of nearly 500,000 scholarly works digitized and made freely available to everyone in the world by JSTOR.

Known as the Early Journal Content, this set of works include research articles, news, letters, and other writings published in more than 200 of the oldest leading academic journals. The works date from the mid-seventeenth to the early twentieth centuries.

We encourage people to read and share the Early Journal Content openly and to tell others that this resource exists. People may post this content online or redistribute in any way for non-commercial purposes.

Read more about Early Journal Content at <a href="http://about.jstor.org/participate-jstor/individuals/early-journal-content">http://about.jstor.org/participate-jstor/individuals/early-journal-content</a>.

JSTOR is a digital library of academic journals, books, and primary source objects. JSTOR helps people discover, use, and build upon a wide range of content through a powerful research and teaching platform, and preserves this content for future generations. JSTOR is part of ITHAKA, a not-for-profit organization that also includes Ithaka S+R and Portico. For more information about JSTOR, please contact support@jstor.org.

心能如身特色而是此的现在对 वित प्रकृतिक वित्यास्य वित्यास्य वि まりかまで日かり」からは、出きれるのかは一般 कुर्यक्षात्रात्ति हे कि हे कि हे कि हे कि है कि यहाः यासार्थिय व्यक्ति विष्यु इम्यन्त्राम् । हार्ष्ट्राम् । वार्ष्ट्राम् । वार्ष्ट्राम् वार्ष्ट्राम् में अवाया वे १ विस्त्र में इसे इसे मार्ग से वर्ग विहा 到日日(五年)上京日本山田田3年1: 五至至3月日月日3日 1 如果刘朝毛拉其可是是高利利的人的 为有一位3883: 四月至日初四日至到18:13年了 इस्मायुक्तिया प्रत्रुक्ति है स्वाप्त मार्थिक स्वाप्त मार्थिक स्वाप्त मार्थिक स्वाप्त मार्थिक स्वाप्त मार्थिक स あるはますいずきょれからなるのがきゃくかまかるとうようなら न्तु वर्षे का प्राथित वर्ष वर्ष के का प्राथित वर्ष के वर्ष में के वर्ष में यक याय रें रे रातिया व्या रें रात्र विश्व ति है या वि है या विश्व ति है या विश्व ति है या विश्व ति है या विश्व ति है यो विश्व ति है या विश्व ति है यो विश्व のるもにはられからなるないからななのままいらばなか あるとうずれる 四月五月夏夏山山是 Fac similes of Inscriptions on ancient Tamba Patras, or Grants on Copper.
in ancient Devanagari character.

राष्ट्र ता रूप राष्ट्र विकास का राष्ट्र 2027日初中国新疆集员到广播中国中国的1111日日 STATESTAND TO THE PROPERTY OF A TOTAL AND THE PARTY OF A TOTAL AND THE इति मुस्य वर्षे या ने से स्वयं या ने स त्रीद्रम्यात्री सीव्रम् १८३३६ में युष्ट्रम्य १०३म कर्ष विकास तिस्त करिया कर करिया कर करिया मान्य विकास 医如此社会到社会的第三条是是自己的自己的是是自己的 रै. त्रेरे हैं इस तिष्ठारी से अरे के या तारी समी दिया व यह नुतुन्न करण वर्त्य में वर्षः यात्र प्रचित्र यात्र प्रचित्र वर्त्य वर्षेत्र 这里中亚岛的自己是自己的国家的国家中国中国的国家中国 वेड्रयवरार्डेस " १००० म्यूर्ड्स यात्री म्वर ला रार्ड्स न है अ प्रश्च के हैं क किया है कि किया है कि किया है कि किया कि किया है किया य प्रमान के विस्तर के प्रमान के प्रमान के विस्तर के प्रमान के विस्तर के प्रमान के विस्तर के प्रमान के प्रमान के विस्तर के प्रमान के प्रम 如其四种的自己的自己的自己的自己的自己的 रहारमा है। हिस : पड़ाहर 130 हरे शिराधित हे या यह माया यह माया रे यह राउ याता माउकार उ। जिस्तार न द त्यात उर्वय्य यम्भवस् ए हम रामग्री रामग्री प्राम्य विश्व के राज्य व्रार्थे मिल्ले द्राया व्रार्थिय के या रार्थे र यह व्रार्थे र यह व्रार्थ म्मिन्न कित्र विकार मिल्लिया है मिलिया है मिलिया है मिलिया य रहेम बेस या ने मेरे प्रह्म देता ने स्थान गाउँ वर्धान के वर्ष के मितियात्र मित्र कर्ण प्रतिमेश्व कर्ण प्रति मेश्व रय राष्ट्र हिए प्या विकृति हिए पर रहेर र्रोत ठक देस तम्

वर अवश्वाता अवस्था क्षेत्र माने प्रति है वर्ष में वर्ष माने क्षेत्र माने के वर्ष माने किया है जिया है न्यान्ध्रयात्यात्रम् स्ट्याय्यान्यात्रम् । स्ट्याय्यायः । स्ट्यायः । स्यायः । स्ट्यायः । स्ट्यायः । स्ट्यायः । स्ट्यायः । स्ट्यायः । स्यायः । स्ट्यायः । स्ट्यायः । स्ट्यायः । स्ट्यायः । स्ट्यायः । स्यायः । स्ट्यायः । स्ट्यायः । स्ट्यायः । स्ट्यायः । स्ट्यायः । स्यायः । स्ट्यायः । स्ट्यायः । स्ट्यायः । स्ट्यायः । स्ट्यायः । स्यायः । स्ट्यायः । स्ट्यायः । स्ट्यायः । स्यायः । स्ट्यायः । स्यायः त्रिश्च स्वासी ८८५ द्राया में विश्व स्वासी प्रश्ने न स्वासी प्रश्ने स्वासी स्वासी स्वासी प्रश्ने स्वासी स्व न्त्राम् वर्षात्रकाः वर्षात्रकात्रात्रात्रकात्रात्रकात्रात्रकात्रात्रकात्रात्रकात्रात्रकात्रात्रकात्रात्रकात्र मनम् एतः करियः कर्षः कर्षः मन्त्री साम्य कर्षे वर्षे व उत्तर्भ मान्य के स्थान के के स्थान के कि ころはない、まちゃかのはあってはあるという。 みのこれところはるもいまるというないののからはない、まちゃかのはのからはのないという रिक ग्राह है से हिल्लि विष्ठी व्राह से स्थाप कि व्राह्म से स्थाप  किया में स्टान के स्वास्त्र के स र्तास्त्र के इस स्वार्थ स्था का स्था के स्था य विश्व के मान के किया माने किया के प्राप्त के मान के किया माने किया के मान के किया माने कि विश्वास्त के राज्य का विश्वास्त के राज्य के विश्वास के राज्य के रा 拉西山南部岛山江江西山湖 超 四种种种 130 हरे विश्व हता हा मार्थ त्राची त्रवास मात्र रेवि या देशका मी दिल्यों से यह मह मह मह मह मह मह र्रहित्य विस्तृति विस्तृति विस्तृति विद्युष्ट प्रार्थे मिन्ने द्राया व ध्रार्थ कक या रार्थ राष्ट्र राष्ट्र य मध्यम्मार्थित्रवर्ष्यार्थम्मार्थित्रवर्ष्यार्थम् म रहम ब्राय ने रहे यह यह महत्य प्रमाय र णहरम्हर रहेक हम । यह र देपम में हर के वह रहेक रहेमस्य हेस्से हेस प्रहेस पर्वेस प्रवेस पर्वेस पर्वेस पर्वेस प्रवेस प्रव रियम् का मा भारत समायहेका या विवास हिल्ल है। प्रार्थित में विस्त्रम्भाग्ने में

किटा में हिर्दे अर्वेचेरेश्वतार्वेचे प्रदेश प्रवाहर में से वार्यों से व इक्ष्यम् सम्याः युवद्युव्यय्याः यात्रम् वृष्ण्याः प्राप्त कुर समें असीतिम् द में हिक्स हरे ही। त मुक्षतं मुक्त हा यह हि हा यह हि हा महि हो भी ही 8年23485: G星是到28年33年4 四部自由至其多年的工具的自己的自身对 至到2日四月,司马至是是多多多年 E是各位在世界的各位的是公司:至此社会的是文 उन्त्या विस्त्रम् १६६० विस्त्रम् १५५० 图中一个马利亚岛和西亚山南山河

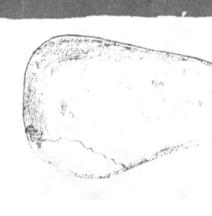


क्षाया है से स्त्यो स्याप्त के स्वाप्त के स् अनुब्धार मुद्र का निर्मा भूदे की रिक्ष प्रायम कर वर की सार की न 思于到了自己的对于不过来自知了多到它的最近一时刊 ग्यामुक्षा । वस्तिवेस्ठम्हिह्यः स्वर्थनः स्व हिर्डे में तर हा तर है से में डिसे में डिसे में डिहार है। ० वैष्यम् रास अर्थे रे स्वीति स्व रे मित्र स्वार्थिय विष् र्वश्यम् म्यान्त्र विष्यम् विष्यम् विष्यम् 可是中国用金工品是工品是公司

Nº1. B

रिष्टिकार में तिक्वमी केष्ठारी समिति विश्वीस विकार्यश्रीमा क्याना प्रत्या या श्राम्य र्वेड्ड ११६० १९५ मध्य प्रमाधिक १९६१ विकास रायात वर वर की यात्र की यात्र मुख्य समार्थ 四人多到已多是不可引着至三年的公共 रहरः प्रथर इनः मिन्नो मह्ये हर्भ 国路安全的四年四年四年四年四年四年18日日本 त्रिक्षर्भवस्य विशिव्य द्वार्ष इउम्ये वे वे व्याप्त वे हैं है हिंद है है ते वे वे るないのはなり

32300 20032 2500032 अर्थे में ये ये वार्ष के या वार्ष में में ने कर के या वार्ष में में ने कर के या वार्ष में ने वार्ष में मार्थे इक्ष्यम्य म्या निवासीय मान्या स्थापित स्थापित प्राप्त कुर समें ठ मोतियह कै हे क्रेन्ड्रीं ह 第日23分别名云: 图图至图月8月日3月日X 四部自由至中国东南部的自己的一日都的首外 到这种的一种是是是是多多的和我是要利 उत्वर्षित्र विक्रिक्ष विक्रम् विक्रम् 图书"对自利打"张西哥是中岛州爱尔·西



अन्नेक्ष्य निर्मा तर्या निर्मा तर्या निर्मा हिन्द्र वा निर्मा हिन् 显于到了对于中国的工作的对于中国的公司是一种对于 त्या रहेता । वर्षे प्रवेशक रहेश राधर देन : या में ०ईव्यम्राम १वीर् क्रीय क्रीय क्रियम १वर्ष व्रम्भ विश्व म्या मार्थ क्ष्य मार्थ विश्व मार्थ मार्थ विश्व मार्थ मार्य मार्थ मार्थ मार्थ मार्थ मार्थ मार्य मार्थ मार्य मार्थ मार्थ मार्थ मार्थ मार्थ मार्थ 中国中国国家工作的工业了了四种种外

是一个多利日本公司的 अव्यविव देव वैक्षित्व किया निम्ब्रिक राम्बर्ध १९५८ है इस्ट्रिक्ट के स्ट्रिक है है है है एए. उनी विक्र के र र के ये र के ये र के र र है ये द रम्पवरवर्षात्र विकारम् विकारम् 双个8到158到3月刊刊等于至了58年;黄岛西 रहा अवर्डन किला किला हिर्ड रायर हा है। 3名公公为为两年工产。西人口3次,五月四 त्रक्रात्र हे स्थात विक्राय प्रमान हे स्थात है है है स्थात है है स्था है है स्थात है स्थात है है स्था है है स्थात है है स्था है है स्थात है है स्था है है स्थात है है स्था है है स्था है है स्था है है स्थात है है स्थात है है स्थात है है 对现实和新

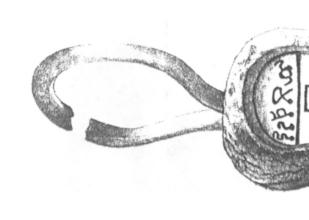
のながあるよれるもりまいまがあいましからいのかかける Try: Af Try find than bring the Alman 188 STORE OF THE PROPERTY OF THE STANDARD OF THE S स्रवेद्धशत अत्रत्म स्रो व्यक्षित्र भारत विश्व हिष् 149 मित्र हाल हा १५००

241度名以上各日名1名至此的人面对各种的 र, मज्य प्रमान है। ये पर देश कर वर्ष है। ला अह प्रमान पर क्र वर्ष मध्ये प्रकाप वर्ष विस्त सुधा है एक सबी भिता है। क्रियाश पर क्राये वेपहें जादः ति त्रह वे क्रिये हिंग पर Lyngy y Engly y Established to the stable of र कर वह में त्रिया हिम प्रार्थ है से प्रार्थ है वह है व प्रस्ति र भेः प निष्टि हैं प्रस्ता है है है जिस्से प्रस्ति है है जिस है है है जिस है है है जिस है है है जिस है いかなずなとの後:風をはしいからないとはとかかに、その य गयाःस् वरष्ठात् देवका क्षेत्रका क्षेत्रका राज्य विषय लिंग स्टित है त्या से सिंग है ति से सिंग है ति ह य स्थार्थित मेरी विद्वार मेरी विद्वार स्थान है है है। さからからいというないとはおりましてなられて CER BURBANA a adtrolle EIPINES EVE 98,59 & B おおりゃかかのかり : तरित्रिवित्रित्रित्र तः ल यमगढ्य रागक एउडार्र हिस्छिडेयधारडा

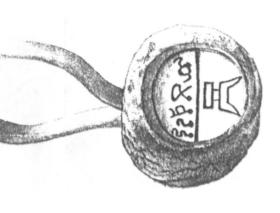
THE AND THE STANGE STAN の中であるよろのよりそのありろうとなっているのかはする Try: Af Tra : Gandalace 83 98199 Ast 88 ANANIA A: HALANIA A TO LUB AND ACAR ANANIA A स्रवेद्धशत्यत्रस्तियूत्रो व्विष्य प्रमाण प्रमाण विष्य हिल 149 मित्र हाल हा १५०६ SING OF WILL SUCHE STANDS OF THE STANDS OF T विकारण पर क्राये वेपहेंगादः तिष्ठह व क्रिये विकारण स्थापन THE STANDARY प्राम्भागान है। यह स्थान है। यह 日はかりないかいのはいいますおいろりによるいまないという THAT SULLE BUT HE SHOW TO SERVE BY THE STANKE BY THE SHOW 1913 Pra & Baruland : (8,83) : (8,83) & Eny (: 18 य गयाःसं वरष्टा वर्षेत्रक प्रक्रिय क्षेत्र वर्षेत्र वर्य वर्षेत्र वर्षेत्र वर्षेत्र वर्य वर्य वर्येत्र वर्येत्र वर्येत्र वर्येत्र वर्येत्र वर्येत्र वर्येत्य CERBURGARA DOWSER OFF PROPORTING EIPTNER EVE 18meramany भिष्ठतिक १ किया विश्वास्त त्र यमग्री र्गाय है। यह सम्बन्ध में प्राथित करा है।

 तिकिथ्यति क् नमस्ति प्रस्ति। のかなるなるといろ 8年前完建了小田子名共和亚利亚工工名:如今上台名:市利市 रहस्र अत्रम् । ब्रिट्स वर्गित्र मध्य के वर्ग महा मिला कर् प्रमाध्य कि के ने कि 以及以外的一个人的一个人的一个人

में प्रमामकी कार स्थापन के समित के सम इस्ट्रेस्ट्रिस्ट्री:तर्राहर्राता श्वराधारिक से ग्रेड 



上高級当の努力的自己就出来不利的思考的公司的同年中的公司 रहम् अत्रोत्न । ब्रिन्स मुर्गित्र मन्त्र प्रमुक्त प्रमुक्त ,य्राम्स्यः स्ट्रियं प्रम्या



A S TE ROLL OF THE PA ति छ । ता छ । महाभाष के प्रति हिट हो है। कर्तिक स्तिति है कि से से सिक्स है कि से सिक्स में मिल के राष्ट्रीक्रिंदिर तिस्वायम तियमित्र ग्रीमित्र ग्रीमित्र भारति । यह है के रहा रामे तिर प्रमुख रागा गी वर्ष रिय राम राम है वर्ष स्तराहा ग क्र गैक्ष के क्षेत्र । ४ मी भी थी : भ हिन मण १०० ज ४४ ५३ ह ३ १२ १३ १ में प्रित्म के १४ भ १ ४ मी ६ ४ १ । ति १ भी १ ४ ४ ४ 12月173年からおけずは記 N. 3. B Dylar:

निर्धार्थ कि स्थापित के म



रिश्विमश्च मिल्लिये में भूष श्रेम हिंग में क

Nº 3. B





## **JOURNAL**

OF

# THE ROYAL ASIATIC SOCIETY.

ART. X.—Translations of Three Copper Plate Inscriptions of the Fourth Century, A.D., and Notices of the Châlukya and Gurjjara Dynasties. By Professor J. Dowson, Staff College, Sandhurst.

[Read March 21, 1864.]

In the year 1837, Dr. A. Burn transmitted to Mr. James Prinsep, then Secretary of the Asiatic Society of Bengal, transcripts and facsimiles of four Copper Plate Inscriptions. "These plates," he said, "were found in the town of Kaira, about ten years ago. The river Watrua runs close to the walls on the north-west side, and was the cause of the discovery, by washing down the walls and earth. They had been handed about the country among the natives for translation, it being supposed they were connected with some deposit of treasure. At last they were brought to me by a fakir, of whom I purchased them."

These plates proved to be of great archæological value, for three of them being dated both in words and figures, they furnished a key to the value of the old Sanskrit numerals. Much pleased with the discovery of this fact, Mr. Prinsep published fac-similes and explanations of the dates,<sup>2</sup> and followed up the clue thus placed in his hands with characteristic ardour.

In October, 1838, after Mr. Prinsep had left India, a transcript and a partial translation of one plate was published,

Journal Beng. As. Soc. vol. vii. p. 908. Thomas's Prinsep, vol. i. p. 262.
 Beng. J. vol. vii. p. 348. Thomas, vol. ii., p. 70.

and in the following month a complete transcript and translation of another was issued.1

Upon Dr. Burn returning home he presented to the Royal Asiatic Society the original plates of three of these inscriptions—those referred to as Nos. 2, 3, and 4 by Mr. Prinsep,—in fact, the doubly dated, and therefore the most valuable of the series. Fac-similes of the three plates were soon afterwards lithographed: but no one having up to the present time prepared translations, they have remained unpublished. I now propose to offer translaterations and translations of the three records.

Of the three inscriptions, the one which is here numbered "2" is that of which a transcript and a partial translation have been already published as above stated; the other two have received no notice beyond Mr. Prinsep's explanation of their Much confusion has hitherto prevailed in the references to the numbers of these plates, from two different series of numbers having been employed in the Journal of the Asiatic Society of Bengal. The numbers appended to the fac-similes now published accord entirely with the numbers used by Mr. Prinsep in his first paper, that on the dates (vol. vii. p. 348). The translation which came out subsequently (ib. p. 908), and which is said to be of "No. 4," is in reality "No. 2," and that at p. 966, which is called "No. 1," ought to have been numbered "4," for it had not been noticed in the first paper. This last, moreover, is the one which is absent from the present series.

The three plates now published were, as it would seem, found together; and although they are records of grants made by kings of different dynasties, they appear to have had a common object, and present some curious points of similarity and connection. Their dates are included within a period of fourteen years (Samvat 380 to 394), and they are grants made, like many others, for the due performance of the Bali, Charu, Vaiswadeva, Agnihotra, and the five great sacrifices. So far, then, they are in agreement. A closer examination proves a much closer identity of origin. No. 1 is a grant by a Châ-

<sup>&</sup>lt;sup>1</sup> Ben . J. vol. vii. p. 908, 966. Thomas, vol. i. pr. 257, 263.

lukya king, Nos. 2 and 3 are grants of a Gurjjara dynasty: but a comparison of the names of the grantees proves them to be identical; and there can be no doubt that the grant: were made by two contemporary dynasties, for the same purposes and to the same individuals. Further, Nos. 2 and 3 agree word for word throughout excepting only in the dates and in the names and other particulars of the grantees. From death or some other reason the number of grantees is considerably reduced in the later document, which can only be looked upon as a cancel of the original grant. No. 1 is the latest in date, and is a palimpsest. Traces of engraving on the backs of its plates are visible, and many of the letters are legible, but no complete word has been read with the exception of the date. The original record has been so hammered and filed as to leave nothing more intelligible. The words Chaturnnavati (94), Samvatsara, Vaisakha, and the numerals プ 紹介 394, somewhat differently formed from those in the reproduced record, may however be confidently picked out. Until I succeeded in making out the date, I was disposed to think that the first copy had been cancelled with the same object as that which led to the supersession of the earlier of the above noticed grants, viz., a change in the names of the grantees. It is just possible, but scarcely probable, that such may have been the reason. With no hint to guide us, it is futile to form any conjectures as to the cause of the abrogation of the first document. We may assume the later document to be a rectification of its predecessor, but such rectification may have been rendered necessary by a great variety of reasons-from the blundering of a conveyancer or engraver to the death of a king.

Taking these documents together, it seems clear that the Châlukya and Gurjjara dynasties favoured the same individuals and were actuated by the same objects. The inference may therefore be fairly drawn that amity existed between them, and that their dominions were contiguous. The locality of

<sup>1</sup> There are some variations in the orthography of the names—thus, the Taximu a of one is doubtless the Tapisura of the other. Such uncertainty in the spelling of vernacular names is common in inscriptions.

the lands granted is sufficiently clear. The town of Jambosara (Jumbooseer) is mentioned in the grants, and the plates were all found together at Kaira, so that in all probability the lands were near these towns, most probably in close contiguity to the former.

Some doubt has hitherto been felt as to the era in which these plates are dated. Was the "Samvatsara" that of Vikramâditya or that of Ballabhi? Between these two eras there is a period of 374 years, so that if the inscriptions are dated in the former they belong to the middle of the fourth century A.D., but if in the latter they will come down to the beginning of the eighth century. The grants are certainly contemporary, so that to decide the era of one is to settle that of all. This may be satisfactorily done by means of grant No. 1. There is good evidence, as will be presently shown, that Pulakesî, a Châlukya monarch, and a successor of the Jaya Sinha of this grant, was reigning in A.D. 489. This fact puts the Ballabhi era entirely aside.

### GRANT No. 1.—CHÂLUKYA DYNASTY.

The first grant was made, as has been stated, by a Châlukya king, and is the earliest of that dynasty which has yet come to light. The history of this dynasty has hitherto been almost the exclusive property of Mr. Walter Elliot, of the Madras Civil Service, who collected some hundreds of inscriptions relating to the dynasties of the south, transcripts of which he deposited in the Library of the Society.<sup>2</sup> The historical results deducible from these Inscriptions he published in a valuable paper printed in vol. iv. of the Journal. Returning to India he still prosecuted his researches, and in 1858 he put forth in the Madras Journal a paper of "Numismatic Gleanings," which contains some important additions to the history of the Châlukyas. These are so necessary for our present purpose that no apology is needed for transferring to our columns that portion of the paper which relates to the

<sup>&</sup>lt;sup>1</sup> See Table of Inscriptions in the Index of the Jour. of the Ben. A. S. p. 200.

<sup>2</sup> There are some notices of the Châlukyas among Mr. Wathen's Inscriptions, published in vols. ii. iii. iv. and v. of the Journal; but these in all probability had come under the notice of Mr. Elliot before he published his memoir. Seeparticularly vol. ii. p. 380, and vol. v. p. 343.

Châlukyas as supplementary to his chief paper on the subject in the Journal of the Society:-

"Previous to the arrival of the first Châlukya in the Dakhan the Pallavas were the dominant race. In the reign of Trilochana Pallava, an invading army, headed by Jaya Sinha, surnamed Vijayaditya of the Chalukya-kula, crossed the Nerbudda, but failed to obtain a permanent footing. Jaya Sinha seems to have lost his life in the attempt, for his queen, then pregnant, is described as flying after his death and taking refuge with a Brahmin called Vishnu Somayâji, in whose house she gave birth to a son named Râja Sinha, who subsequently assumed the titles of Rana-râga and Vishnu Vardhana. On attaining to man's estate, he renewed the contest with the Pallavas, in which he was finally successful. cementing his power by a marriage with a princess of that race, and transmitting the kingdom thus founded to his posterity. His son and successor was named Pulakesî, and his son was Vijayâditya II. A copper sâsanam, recording a grant made by Pulakeşî which bears date s.s. 411 or A.D. 489, is extant in the British Museum. The next prince was Kîrtti Varma, who left two sons, the elder of whom, Satyasraya, succeeded him in the kingdom of Kuntala-desa, the capital of which was Kalyan, a city still existing under the same name, about one hundred miles west and a little north of Hyderabad; while the younger, Kubja Vishnu Vardhana or Vishnu Vardhana the Little,1 established a new seat for himself in Telingana by the conquest of Vengipuram, the capital of the Vengi-desam, which comprised the districts between the Godavery and the Krishna below the Ghats. This event appears to have taken place about the end of the sixth or the beginning of the seventh century.

"The two families ruled over the whole of the table-land between the Nerbudda and the Krishna, together with the coast of the Bay of Bengal from Ganjam to Nellore, for about five centuries.2 The power of the Kalyan dynasty was sub-

<sup>&</sup>lt;sup>1</sup> The word kubja properly signifies "crooked" or "hunch-backed."

<sup>2</sup> Dating from the first conquest of Raja Sinha, the whole period would be seven centuries; but there is some chronological obscurity about the earlier princes of the series which we hope to clear up hereafter.

verted for a time in the end of the ninth or beginning of the tenth century, and the emigrant prince or his son succeeded by marriage in A.D. 931 to the throne of Anhalwara Pattan in Guzerat, which his descendants occupied with great glory till A.D. 1145.1 But in A.D. 973 the dynasty of Kalyan was restored in the person of Tailana Dova, and ruled with greater splendour than before till its extinction in A.D. 1189 by Bijjala Deva, the founder of the Kalabhuriya dynasty.2

"The junior branch extended their territories northwards from Vengi to the frontiers of Cuttack, and ultimately fixed their capital at Râjamahendri, the modern Rajahmundry. More than one revolution appears to have occurred in the course of their history, but the old family always contrived to regain its power, until the kingdom passed by marriage to Râjendra Chola, the then dominant sovereign of Southern India, in whose person the power of the Cholas had reached its zenith. Whether the acquisition of Telingana was due entirely to inheritance or to the joint influence of force cemented by matrimonial alliance, is not clear. The fact, however, is certain, that the Chola power was established in the eastern Châlukya territories for upwards of a century and a half, and has left permanent traces of its existence. Râjendra Chola was succeeded by his son Vikrama Deva, surnamed Kulottunga Chola. On the death of his uncle Vijayaditya, who had been viceroy of Vengi-desam, the king deputed his son Râja Râja to assume the office; but after holding it for one year, A.D. 1078, he resigned it in favour of his younger brother, Vîra Deva Chola, who assumed the title of Kulottunga Chola. His grants are found in great numbers from A.D. 1079 up to the year 1135, when a partial restoration of the Châlukya line appears to have taken place, and they maintained a feeble and divided influence till the latter part of the twelfth century, when the country fell under the sway of the Kakatiya dynasty of Warangal.3'

"To assist future inquiries in assigning the coins of the

<sup>1</sup> Tod Ann. Rajasthan, where the Anhalwara family is styled both Solanki and

Châlukya, pp. 80 and 97.

2 Journ. R.A.S. vol. iv., p. 17; and Madras Journ. Lit. and Sc. vol. vii. p. 209.

3 The earliest inscription of the Kakatiyas that has been met in Vengidesam, now the Northern Circars, bears date A.D. 1175, the latest 1336.

Chalukya race to their proper authors, a list of the sovereigns of both branches is subjoined:—

- 1. Jâya Sinha, Vijayâditya.
- 2. Râja Sinha, Raņa Râga, Vishnu Vardhana.
- 3. Vijayâditya II.
- 4. Pulakesî, A.D. 489.
- 5. Kîrtti Varma I.
- 6. Mangalişa.

Kîrtti Varma had two sons, of whom the former, Satyâṣraya, succeeded his father and uncle (who seems for a time to have usurped his rights) as the representative of the Kalyân branch, and from him that line has been called the Satyâṣraya Kula, while the latter Vishnu Vardhana the Little (Kubja) was the founder of the Râjahmundry dynasty.

#### WESTERN LINE.

- 7. Satyâşraya began to reign A.D. 609.
- 8. Amara.
- 9. Aditya.
- 10. Vikramâditya I.
- 11. Vinayâditya, Yuddha Malla, began to reign A.D. 680.
- 12. Vijayâditya III. began to reign A.D. 695.
- 13. Vikramâditya II. began to reign A.D. 733.
- 14. Kîrtti Varma II.
- 15. Kîrtti Varma III., cousin of the last, A.D. 799.
- 16. Tailapa.
- 17. Bhîma Râja.
- 18. Ayya or Kîrtti Varma IV.
- 19. Vijayâditya IV.
- 20. Taila Bhûpa II. or Vikramâditya III., in A.D. 973 restored the monarchy which had been for some time usurped by the Ratta Kula. He died A.D. 997.
- 21. Satyâșraya II. Irivi Bhujânga Deva, A.D. 997.
- 22. Vikramâditya V. began to reign about A.D. 1008 (?)
- 23. Jaya Sinha Deva, Jagadeka Malla, about A.D. 1018 (?)
- 24. Someşwara Deva I., Trailokya Malla, Âhawa Malla, about A.D. 1040.
- 25. Someşwara Deva II., Bhuneka Malla, A.D. 1009, expelled by his brother.

- 26. Vikramâditya VI., Kâli Vikrama, Tribhuvana Malla, in A.D. 1076.
- 27. Someswara Deva III., Bhûloka Malla, A.D. 1127.
- 28. Jagadeka Malla, A.D. 1138.
- 29. Tailapa Deva III., Trailokya Malla, A.D. 1150.
- 30. Someswara Deva IV., Tribhuvana Malla, A.D. 1182. Dethroned by Bijjala Deva of the Kalabhuriya line.

### EASTERN LINE.

- 1. Vishnu Vardhana II., or Kubja Vishnu Vardhana, conquered Vengi A.D. 605.
- 2. Jaya Sinha I.
- 3. Indra Râja, his brother.
- 4. Vishnu Vardhana III.
- 5. Manga Yuva Râja.
- 6. Jaya Sinha III.
- Brothers. 7. Kokkili.
- 8. Vishnu Vardhana IV.
- 9. Vijayâditya I.
- 10. Vishnu Vardhana V.
- Narendra Mriga Râja.
- 12. Vishnu Vardhana VI., or Kâli Vishnu Vardhana.
- 13. Vijayâditya II., or Guna Gunânka Vijayâditya, conquered Kalinga.
- 14. Châlukya Bhîma I., his brother.
- 15. Vijayâditya III., or Kollâbhiganda Vijaya.
- 16. Amma Râja.
- 17. Vijayâditya IV., or Kandagachita Vijaya.
- 18. Tâlapa. Usurper.
- 19. Vikramâditya V., the son of a brother of Amma Râja I.
- 20. Yuddha Malla.<sup>1</sup>
- 21. Râja Bhîma II.
- 22. Amma Râja II.
- 23. Dhanârnava. Interregnum of twenty-seven years.
- 24. Kîrtti Varma, son of Dhanârṇava.
- 25. Vimalâditya, his brother.
- 26. Râja Râja Narendra.

<sup>1</sup> Some accounts make Yuddha Malla the son and successor of Tâlapa, and expelled by Vikramâditya V.

- 27. Râjendra Chola.
- 28. Vikrama Deva Kulottunga Chola.
- 29. Râja Râja Chola, viceroy for one year.
- 30. Vîra Deva Kulottunga Chola or Saptama Vishnu Vardhana. Viceroy from A.D. 1079 to 1135.

"The Châlukyas were of lunar race, and apparently worshippers of Vishnu. The fact of Râja Sinha having been educated by Vishnu Bhatta Somayâji, a Vaishnava Brahmin, probably tended to confirm the attachment of the family to this creed. Their style and titles are as follows: Châlukyakula; Mânavyasa-gotra; Hâritî-putra, whose royal power was the gift of Kausika; nourished by the seven mothers; worshipping Swâmi Mahâsena; having the boar signet (lânchhana) the gift of Bhagavân Nârâyana. The insignia of royalty are elsewhere described as consisting of

The white canopy Swetâtapatra.
The conch shell Sankha.

The naubat l'ancha-mahâ-sabda.

The plough ensign

The drum

Halaketana.

Dhakka.

The boar signet Varâha-lânchbana.
The peacock fan Mayûra-pinchha.

The spear or mace Kunta.
The throne Sinhâsana.

The royal arch Makara-toraṇam.
The golden sceptre Kanaka-daṇḍam.

But in the inscriptions recorded when they were at the height of their power, the white canopy, the boar signet, the peacock fan, the royal mace, and the golden sceptre only are mentioned. Of these, the boar ensign was the most celebrated, and was the symbol invariably represented on their money and on their seals, sometimes in the latter accompanied by the conch shell, the drum, the peacock fan, and other insignia not enumerated above, as a lotus, an ankus or elephant goad, candelabra, a seat or stool (?) the swastika cross, etc.; and on those of later date a sword.

<sup>&</sup>lt;sup>1</sup> It is not clear whether the sword was ever assumed by the true Châlukyas or only adopted by a succeeding dynasty.

"Considering the extent and long duration of their power it is extraordinary that their coins are not more frequently met with. Those represented in plate I. (thirty-four in number) contain the whole that have fallen in my way during the twenty-five years that I have been inquiring for them. I have, however, heard of several specimens which have not come under my own eye."

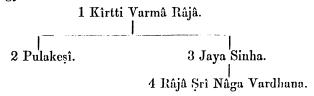
It thus appears that the earliest date known to Mr. Elliot was that of Pulakesî in Saka 411 (a.d. 489). This date was obtained from a copper-plate in the possession of Captain Jervis, and of which a transcript and abstract translation was published by Mr. Wathen in the Society's Journal. This grant and the inscription from Ye-ur which Mr. Elliot gives at length<sup>2</sup> are the most important of his authorities. The latter inscription was found upon an upright stone in a temple at Ye-ur in the Nizam's territories, and the genealogy it contains professes to have been copied from a copper plate. The last name it records is that of Tribhuvana Malla, No. 26 in the above list, who was reigning in A.D. 1076.

Upon the above authority, the rise of the Châlukya line has hitherto been placed in the early part of the fifth century; but the inscription now translated, being dated in 394 Samvat, or 338 A.D., and being a grant made by the third of the line, the origin of the Châlukya dynasty must be referred to the very beginning of the fourth century after Christ, perhaps even it may be carried back to the third century.

Jaya Sinha, the first named in this grant, is always recognized as the founder of the dynasty. The grant of Pulakesî and the inscription of Ye-ur both declare the fact, and it may be considered certain. The names of his two successors, Buddha Varmâ (son), and Vijaya Râjâ Sarvva (grandson), which we find in this grant, have not been met with in any other record, unless indeed the latter can be identified with the Vijayâditya No. 3 of Mr. Elliot's list. The date of this grant being 338 A.D. a period of about two hundred years intervenes between Jaya Sinha and the grant of Pulakesî in 489, and

to fill up this period Mr. Elliot gives only three names, Pulakesî standing fourth in the list. There is here a manifest deficiency; if the dates are right other names must have intervened: there can therefore be little hesitation about introducing those which the present inscription supplies. nearer an inscription comes in point of time to the facts which it records, the better is its authority. The names of unfortunate or unenterprising kings soon fade from the memory, and among a people so devoid of the true historic feeling as the Hindus, they easily fall into utter oblivion. Such will be found to be the fact as we proceed. of Pulakesi and other favourites are frequently cited, while others are as frequently passed over. Nor is this all; the order of the names is sometimes found inverted, and other discrepancies are met with which show that the Châlukyas were but poorly informed about the history of their line.

In addition to the inscriptions above noticed, several belonging to this dynasty have appeared in the pages of the Journal of the Bombay Branch of the Royal Asiatic Society. The earliest of these is without date, but the character in which it is written closely resembles that of our plates, and cannot be very long posterior to them. The names also indicate the period to which it belongs. Râjâ Ṣrî Nâga Vardhana makes the grant which the inscription records, and the genealogy is thus stated:



Even thus early we find discrepancies. According to Mr. Elliot's table, and the generally received genealogy, Pulakesî was the father, not the son, of Kîrtti Varmâ, and it seems impossible to understand this error. The names of Jaya Sinha and of his son Nâga Vardhana also present great difficulties. Mr. Elliot's list gives us Vishnu Vardhana, the

founder of the Eastern line, who conquered Vengî in A.D. 605, and he was succeeded by a Java Sinha. Could it be supposed that Vishnu Vardhana and Nâga Vardhana were mere variant names of the same monarch, it would be necessary to invert this order; but although the grant is in all probability inaccurate as to the relative position of the grantor's uncle and grandfather, the same error cannot be supposed to have been made respecting himself and his next relative-it is utterly incredible that the name of his son should have been given as that of his father. evidence upon which Mr. Elliot has placed Jaya Sinha after Vishnu Vardhana does not appear; it was no doubt cogent, and the result ought not to be lightly disturbed. The alternatives, then, are these—shall the names of Vishnu Vardhana and Nâga Vardhana be assigned to the same person, and the name of Java Sinha be placed before him, instead of after, in the order of succession? or shall the names of Naga Vardhana and Jaya Sinha be introduced as additions to Mr. Elliot's list? In favour of the former there is nothing but the partial and unsatisfactory resemblance of the names. Independent of what has been urged against the first alternative, there are reasons in favour of the opposite course and for the interpolation of the names. The date of the inscription now published is 338 A.D., and, as above stated, the character in which it is written and that of the grant under discussion are very similar. This should lead us to place the two as near together in point of time as possible. But if Naga Vardhana and Vishnu Vardhana were names of the same monarch, three centuries must have passed between the two inscriptions, for Vishnu Vardhana was reigning in 605 A.D. This is a longer interval than the similarity of the writing would seem to warrant. Again, the date of Pulakesî is 489 A.D., and Satyâsraya, who stands third after him in the list, began to reign in 609 A.D., thus leaving a period of one hundred and twenty years occupied by only two names. There appears also to have been some interruption of the regular order or succession about this time. The evidence then is all in favour of the introduction of the names of Jaya Sinha and Rûjâ Şrî Nâga Vardhana before the name of Satyûşraya.

Mr. Elliot has already noticed the great power of Pulakeşî and the alleged extent of his conquests. This grant of Nîga Vardhana's states that Pulakeşî "reconquered his own dominions, and (afterwards) the three kingdoms of Chera, Chola and Pûndya;" he also "gained a new title by the defeat of Srîharsha, lord of the northern countries."

The grant which seems to come next in order of time is without date.2 It contains only three names-Rana Vikrama, his son Kîrtti Varmâ, and his son Vishnu Vardhana. inscription was translated by Bal G. Shastree, who conceives this Rana Vikrama to be represented by Vikramaditya II., No. 13 of the list, who was succeeded by a Kîrtti Varmâ. If this were correct, the name of Vishnu Vardhana would have to be inserted in the above list, between the two Kîrtti Varmas (Nos. 14 and 15). A different appropriation of the names, however, seems preferable. The Shastree indeed hesitated greatly in his identification, observing that the character in which the grant is written might "make it two or three centuries older;" to which observation a hearty assent may be given. The loose and varying nature of the genealogies in these grants has already been commented upon. It would seem, indeed, that the word "son" meant nothing more than "descendant" in many cases, and that the writers, either from ignorance, or from utter indifference to the truth, frequently confined themselves to the recital of some of the more prominent and best-remembered names. The writing of the document should carry it back as far as possible. It may therefore be assigned to Vishnu Vardhana, the founder of the Eastern line, who conquered Vengî in A.D. 605. His father was Kîrtti Varmâ, as stated in the inscription, but to find a name at all in consonance with that of Rana Vikrama it is necessary to go back three steps to Rana Râga, No. 2 of Mr. Elliot's list, and to get at this name the renowned and often cited Pulakesi is passed over. There is a difficulty about this, but a solution may possibly be found in the fact that

<sup>1</sup> Journ. iv. p. 8.

<sup>&</sup>lt;sup>2</sup> Journ, Bomb. R. V.S. ii p. 1.

Raṇa Râga was known also under the names of Râja Sinha and Vishņu Vardhana. The latter being the name of the author of the grant may have induced him to single out and record the monarch who bore the same name as himself.

The next two grants1 have no date, but their place in the series is obvious. They give the names of four kings to whom the kingdom descended regularly from father to son-Pulakeşî, Kîrtti Varmâ, Satyâşraya, and Vikramâditya. wording of the genealogy is peculiar. After naming "Pulakeşî Vallabha the ornament of the race," it goes on: "his great grandson, the great grandson of Kîrtti Varmâ, the beloved son of Satyasraya, the unconquerable Vikramaditya." The grants are made by the wife of Chandraditya, elder brother of this Vikramâditya, but no mention is made of his ever having sat upon the throne. We have next a grant by Vijayâditya,2 who declares himself to be the son of Vinavâditya, son of Vikramâditya, and so on upwards to Pulakeşî, in exact accordance with its predecessor-in fact, the wording of the two grants is to a great extent identical. This grant is dated Saka 627 (A.D. 705) and agrees with Mr. Elliot's table which makes this king to have reigned from 695 to 733 A.D. Two points in these records are worthy of observation. all declare Satyasraya to have gained the title of Parameswara by his "defeat of Srî Harsha Vardhana, lord of the northern countries;" a victory which a previous inscription ascribed to Pulakeşî, who also bore the appellation of Satyâşraya or Satya Srî, and who has the best title to the honour of the conquest. This is another instance of the very vague and imperfect knowledge which the Châlukya monarchs possessed of the history of their dynasty. The last-named grant (dated 705 A.D.) states that Vinayaditya "made the rulers of Kumara, Pârasîka, and Sinhaha pay him tribute, and gradually acquired the full symbol of supremacy by the overthrow of the kings of the northern countries." Kumara is evidently intended for Kumârî or Kumârikâ, that is, the most southern of the duipas or divisions of Jambudwîpa, from which we derive our Cape Comorin. Pârasika is Persia, and Sinhaha is a

<sup>1</sup> Journ. Bomb. R.A.S., iii. 205, 211.

<sup>&</sup>lt;sup>2</sup> Ibid. p. 206.

blunder for Sinhala, Ceylon. The vaunt of the inscription must doubtless be taken with a very considerable deduction, but it may be fairly assumed that the king's knowledge and ambition extended thus far; perhaps even that he had some intercourse with these countries, and flattered his vanity by stretching some complimentary visit or present into a proof of homage and submission.

The next reference to the Châlukyas is made in a grant of the Râshṭra Kûṭa dynasty,¹ dated 1008 A.D., which says that Teilapa of the Châlukya race, having defeated a Râshtra Kûta king, came to the throne, and that "his son Satyâşraya became after him the master of the earth." This confirms Mr. Elliot's statement that the Rattas gained the ascendancy for a time, till they were finally reduced to subjection by Teilapa."2 The date also agrees, as Satyâsraya reigned from 997 to 1008 A.D. This grant being dated in 1008 may justify us in extending his reign a little longer.

There are two other grants<sup>3</sup> of a later period, when the power of the Chalukyas had passed away, but when the name of the dynasty was still maintained by a family reigning or pretending to reign in a corner of the old kingdom. These inscriptions come from the Konkan; one is dated 1182 Saka, or 1260 A.D., the other bears no date. They profess to belong to the Châlukya family, but they bear none of the characteristic marks of the Châlukya inscriptions. The family is said to be descended from Karna, not from Hârîti like the old Châlukyas. The dated inscription gives only one name, that of Kanwa-deva, by whose minister Kesava, surnamed Mahâjanî, the grant was made. The other gives the names of some "kings of this dynasty who flourished at Sangameswar (or Someswar) in the Konkan." They are Karna, his son Vegutideva, his son Somadeva, who "repaired to heaven, but finding a vacuity on the earth returned to it." Lastly, his son Someswara, who made the grant.

This closes the record of the remains of the Châlukyas. If the facts and speculations above set forth are correct, the

Journ, Bomb. R.A.S., i., 210, 220.
 Journ, Bomb. R.A.S. ii. 270; iv. 105.

<sup>&</sup>lt;sup>2</sup> Journ. iv., 11.

following additions and alterations must be made in the first part of Mr. Elliot's list so often referred to. The lists of the Western and Eastern Lines remain unchanged.

- 1. Jaya Sinha, Vijayâditya.
- 2. Buddha Varmâ.
- 3. Vijaya Râjâ Sarvva, 338 A.D.
- 4. Râjâ Sinha, Raṇa Râga, Vishņu Vardhana.
- 5. Vijayâditya II.
- 6. Pulakeşî, A.D. 489.
- 7. Kîrtti Varmâ.
- 8. Mangalişa.
- 9. Jaya Sinha.
- 10. Râjâ Şrî Nâga Vardhana.

Additional names are still required to fill up the interval between No. 3 and No 6.

At the end of the lists the following names may be added of kings bearing the appellation of Châlukya and reigning in the Konkan. It is unknown whether Kânwa Deva, whose date is given, was prior or subsequent to the others. Possibly he may be the same as Karna.

Kânwa Deva, 1260 A.D.

Karna.

Vetugideva.

Somadeva.

Someswara.

# 2. THE GURJJARA PLATES.

These two plates may, for all practical purposes at the present day, be considered duplicates. The earlier is dated 15 Kârtik Samvat 380, the later, Kârtik full moon Samvat 385, and as before observed the last differs from the first only in the dates, and in a few particulars respecting the grantees. In the later grant the grantees are reduced in number, and they are not classified, as in the first grant, under the Vedas which they respectively taught and studied; but the differences are so trifling as to render it quite unnecessary to give separate transcripts and translations of both documents. Where they differ the corresponding passages are placed in parallel columns, by which means the variations will be

readily distinguished. There are many minor differences of orthography, and each document has a series of stops or divisions in certain passages which are not found in the other. These stops have all been introduced into the transcript, which may be considered a fair copy of the original document as drawn from two independent versions. Whatever is obscure or doubtful in one has been supplied from the other; but no alterations or emendations have been made beyond the introduction of the \*, which is always absent in the originals.

The transcript now published differs occasionally from that which appeared in the Journal of the Asiatic Society of Bengal, which would seem to have been rather hastily prepared. The differences, however, are but of slight importance, and the only one deserving notice is that in the title of the grantor, which is Praṣânta not Praṣanga-râga. His name Ṣridatta Kuṣalî is used in the body of the deed, but his assumed title Praṣânta Râga is employed in the attestation at the end. In the Bengal transcript the title has been substituted for the name in the body of the deed, for which the original gives no warrant. There the name is clearly and unequivocally Ṣrīdatta Kuṣalī.

"The original of this grant," says the article before referred to, "is in the character of the fourth line of the alphabet plates of this volume, corresponding with that ascertained from inscriptions and coins to have been in use in Gujarat at the period of the date of these grants. Their antiquity is thus assured, but part of the singularity of this particular one consists in the style of the eulogium of the rûjâ and his ancestors who made the grant, every word of which has a double meaning. The grant is in Sanskrit prose upon the model of the Kadambari, by Bana Bhatta, and has been explained and commented upon at length by the Pandit Kamalâkânta, who regards it as a wonderful composition. It is impossible to give this explanation in these pages, for the eulogistic part of the grant, being in this double-meaning style, cannot be translated, the English language not ad-

mitting of the same amphibologies. The play upon words commences from the first sentence, which plainly translated implies, 'There was a person named Sâmanta Datta, born with fortunate auspices in the royal race of Gajjara; but these words admit also of translation, 'There was a boundless ocean named Gajjara,' and this original double meaning has led to the use of epithets and qualities for the râjâ which hold equally with different meanings, as applicable to the Gajjara ocean. After wearing out the ocean amphibology, serpents, elephants, and women are pressed into the service by the ingenious conveyancer who drew this deed; and it is a pity that such a happy device for multiplying mystifying words cannot be more fully explained for the benefit of the practitioners in Chancery-lane, who might find their advantage in imitating it."

The account thus given of the composition of this grant is correct in the main, though somewhat too broadly stated. The opening of the grant is certainly written in the style described, and similar passages subsequently occur; but there is much which seems to bear only one signification. "amphibological" style is not uncommon in similar grants of land, but the writer of the present document was certainly an adopt in the art, and far transcends his cotemporary the Châlukya conveyancer, whose style is simplicity itself compared with this. The nature of this "amphibology" has been pretty accurately exemplified by the specimen given relating to the Gurjjara ocean. The royal family is compared to the ocean, and such qualities as sthairyya, stability; gâmbhîryya, profundity; and lâvanya, saltness or beauty, are attributed to And so whenever a natural object is employed as a similitude, epithets are used which are applicable to both type and antitype. No attempt has been made to reproduce this equivoque in the translation, for it would be impossible to follow it up completely, nor would it be appreciated if successfully rendered. Our object is if possible to pick out a few grains of history, and so the whole of the eulogy has

<sup>&</sup>lt;sup>1</sup> This is a curious blunder persistently repeated. The original is clearly Gurjjara, and so it is rendered in the Bengal transliteration.

been translated with direct reference to the royal personages and their family.

These grants furnish all that is known of the Gurjjara dynasty. The genealogy of the grantor is thus stated—Sâmanta-datta was succeeded by his son Vîta-râga, otherwise called Jaya-bhata, and his son Ṣrî-datta Kusalî was the author of the grant. In the attestation at the end of the document, the grantor calls himself "Prasânta-râga," a title similar in signification to Vîta-râga, the name borne by his father.

This attestation or note at the end of the document is worthy of especial notice. The words are: "This is the own hand of Prasânta-râga, son of Vîta-râga, devoted to the worship of the Sun." The natural interpretation of the swa-hasto, "own hand," is own hand-writing, "autograph;" and if this is the real meaning, the words must be looked upon as an attestation added by the grantor himself, or some one specially authorized to sign for him. In the earlier grant this attestation is remarkably clear, in the later one many of the letters are defaced; but there is no doubt about the two being identically the same. When the writing of this attestation is compared with that of the body of the grant, a very considerable difference is apparent. The general style of the whole, and the forms of many individual letters, present a much more modern appearance. Judging from the character of the writing alone, by Prinsep's Alphabets, it would seem to belong to a period at least three centuries later than the character and the date of the grant itself. One or two of the letters, indeed, bear a still more modern appearance. And it is by the later forms that the age of an inscription must be judged, if judged at all by mere fashions of writing. New forms have to battle long against old habits of writing-and hence old forms should have less weight in favour of antiquity than later ones on the side of a more recent date.

In Prinsep's well-known table of alphabets dates are affixed to the several lines, and the inscriptions from which they were derived are stated. Conclusive evidence is thus afforded of the use of a particular form of writing at the period in question; but the evidence proceeds no farther, it does not prove that archaic forms had fallen entirely into desuetude, or that new ones had not already sprung into existence and obtained a more or less extensive currency. That the fashion of writing and forms of letters afford some evidence, some strong indications of the date of their execution, is undeniable; but the date ought not to be assigned with that precision which the tabulated and dated forms of Mr. Prinsep's alphabets have been considered to authorize.

Returning to the document which has elicited these observations, does it furnish any evidence as to the time when the "attestation" was written. Apart from the style of the character, there is nothing in the appearance of it to suggest its having been written subsequently; and if the grantor really wrote it, or if any new hand added it for him, some difference of style might be expected, though not perhaps of the kind observable. On the other side, it is difficult to believe that the royal grantor would thus take the trouble of engraving the letters with his "own hand;" or that he or any other than a regular engraver should have executed the work so well-for the writing is fully equal, perhaps superior, to that of the deed. There is one fact, however, which seems decisive. The name given to the grantor by the attestation is Prasânta-râga. This, as before observed, is a title similar in signification to that of his father Vîta-râga, whose real name was Jaya Bhata. The grantor's true name was Sridatta Kusali, and that name alone appears in the body of the grant. So that, if what we have called the attestation was added after any considerable lapse of time, the name employed in the document itself would doubtless have been This fact, and that of the attestation extracted and used. appearing on both grants, leave little or no room for doubting it to be what it purports, an attestation written by the hand or by the direct authority of the grantor himself. Satisfactory proof is thus afforded that two sorts of writing were used cotemporaneously, which, judging from mere appearances, would seem to belong to periods two or three centuries apart.

A somewhat similar attestation by the writer is found at

the end of the Châlukya Grant (No. 1). There, however, the name is clearly that of the engraver, and has no connection with the name of the grantor. The letters in this attestation are larger than those in the body of the document, but the form and style of them are the same.

Another interesting fact in this inscription is that the grantor and his ancestors were declared worshippers of the sun. The prevalence of this worship in this part of India about the time of these grants has already excited attention, and one of the kings recorded in the Vallabhi Grants was a "great adorer of the sun." 1 This worship, however, must not be understood as a worship, pure and simple, of the great luminary, but as a preference given to him over the other deities of the Hindu Pantheon. This fact of "Sun-worship" entirely escaped notice in the account of the grants which was published in the Journal of the Asiatic Society of Bengal, but stress has since been laid upon the circumstance of the Vedas being unmentioned in the grants, and of their not "containing one word of Brahmanical gods or Brahmans." 2 A perusal of the translation will show this statement to be unfounded. There is, perhaps, less reference to Hindu gods than is usual in these documents; but the grant is distinctly made, for encouraging the study of the Vedas, to Brahmans whose names and gotras are specified; and in the first or cancelled grant the grantees are arranged in distinct classes as teachers and students of the four Vedas. The objects for which the grant was made, the perpetuation of the Agnihotra, etc., the "five great sacrifices," are also clearly indicative of the Brahmanical bias of the grantor. The whole document, indeed, is pervaded with Hinduism, and the worship of the sun, which the grantor and his family professed, must therefore be considered as a development of one of the widespreading ramifications of the Hindu faith.

Lastly, it may be stated that each grant consists of two plates, which were held together by a ring of copper fastened

 <sup>&</sup>lt;sup>1</sup> Thomas's Prinsep, vol. i. p. 255.
 <sup>2</sup> Table of Inscriptions in Index to the Journ. of the As. Soc. of Bengal. This statement was based on the few passages which had been translated in vol. vii.

by a lump of lead, upon which is impressed in relief the name of "Sâmanta Datta." The grantor thus continued to use his grandfather's seal.

### No. 1. THE CHÂLUKYA GRANT.

- $\Lambda$  । त्रीं खिसा। विजयस्कन्धावारे । विजयपुरदासका । श्ररदुपगमप्रस-
  - 2 त्रगगनतलविषलविपुलि विविधपुरुषर्त्रगुण्निकरावभासिते महा-महीपात्रयदः खः गंभीर्यवितिखित्वनुपालनपरे महादधाविवमान-
  - 3 व्यसगीचाणां हारीतिपुचाणां खामिमहासेनपादानुध्यतानां चलुक्या-
  - 4 नामन्धः भ्यपगतसज्जजज्ञाचरपटलगगनतज्ञगतिशिश्रिरकरिकरणक्-वलयतरयण्यः श्रीजयसिंहराजः तस्यसुतः प्रबलरिपुतिमिरपटल-
  - 5 भिदुरः सततमृदयस्रोत¹ . . . . मदाखिण्डतप्रतापो दीवाकर इव वद्यभ रण्विकान्तश्रीबुद्धवर्माराजः तस्य पुत्र प्रिथियामप्रतिरथः चतु-
  - 6 रुद्धिसलिलास्वादितयशो धनपवर्षोन्द्रानाकसमप्रभावः खबाज-
  - ७ बिल्पाची । . . राजश्रीः प्रातापातिश्रयोपनतसमयसमन्तमण्डलः पर्रापीदितधर्मार्थकाम . . . प्रणतिमाचसुपरितोषगभीराव्रत-
  - ६दयः सम्यक्प्रजापालनाधिगतः ². न्धक्तपणभेरणागतवत्सलः यथा-भिलिषतफलप्रदो मातिपतृपादानुध्यातः श्रीविजयराजसर्वस सर्वा-
  - 9 नेव <sup>3</sup> विषयपतिराष्ट्रग्राममहत्तराधिकारिकादीन्समनुदर्शयत्यसु-वस् सम्विदितं त्रसाभिर् यथा काशाकुलविषयान्तर्गतः 4सन्धियंपु-
- 10 व्यिणपरिययचसग्रामः सोद्भगः सोपरिकरः सर्वदित्यविष्टिप्रातिभे-
- 11 दिकापरिहीणः भूमिच्छिद्रन्यायेनाचाटभटप्रावेश्वः जंबूसरसामान्य-वाजसनैयवाष्वाध्वर्यमत्रह्मचारिणां मातापित्रीरात्मवशुख्यशोभि-
- 12 वृद्धये वैशाखपुर्णमास्यामुदकातियार्गणप्रतिपादितः अरद्वाजसगोचा-दिखरविः पत्तिके दे इन्द्रग्रुराय पत्तिका ताविग्रुराय द्वार्धपत्तिका
- 13 द्वरखार्धपत्तिका दामाय पत्तिका द्रोणायार्धपत्तिका श्रत्तस्वा-

<sup>&</sup>lt;sup>1</sup> The plate is much abraded in these places, and the characters either obliterated or very indistinct.

<sup>&</sup>lt;sup>2</sup> Here there is a clearly written character which I cannot decipher.

<sup>3</sup> Here the letter v has been supplied.
4 The text is very doubtful here. Sandhiya seems clear. The superscribed mark over the last letter may be anuswara, although it is not written in the usual way. The following letter va, which appears in the lithograph, is not fully warranted by the plate. The next two characters may be prithvi. Whatever may be the right reading, it is clear that the doubtful word consists of some name or descriptive title of the village granted.

मिने अर्धपत्तिकामा र्लायार्धपत्तिका पिष्टदेवायार्धपत्तिका सो-14 मायार्धपत्तिका रामश्रमीणो वीपत्तिका भाव्ययार्धपत्तिका द्रोणध-रायार्धपत्तिका धूम्रायणसगोत्रानुकायदिवर्धपत्तिका शूरायार्धप-15 त्तिका ॥ दीण्डकीयसगोत्रभट्टेः पत्तिका समुद्राय दिवर्धपत्तिका द्रोणाय पत्तिका वयं ताविश्मिणी पत्तिके दे भट्टिने ध्रिपत्तिका 16 वचायपत्तिका द्रोणशर्मणो न्द्यपत्तिका दितियद्रोणशर्मणे न्ध्य-त्तिका॥ काभ्रापसगोत्रवप्पस्वामिने तिस्रः पत्तिका दुर्गश्रमीणे न्धप-17 त्तिका दत्तायायार्धपत्तिका कार्ष्णनसगोत्रवादायव वर्धपत्तिका सेलायपत्तिका द्रोणायपत्तिका॥सोमायार्धपत्तिका सेलायार्धपत्ति-18 का ववश्रम्मणि ध्रपत्तिका भायिखामिने ध्रपत्तिका॥ माथरसगीव-विशाखायपत्तिका धरायपत्तिका नन्दिने पत्तिका कुमाराय पत्ति-19 का रामाय पत्तिका पात्रस्यार्धपत्तिका गणायार्धपत्तिका कोईवा-यार्धपत्तिका भायिवट्टायार्धपत्तिका नर्माणे र्धपत्तिका रामग्रमिणे 20 र्धपत्तिका ॥ हारितसगोत्रधर्मधरायदिवर्धपत्तिका ॥ वैप्णवसगोत्र भट्टिने पत्तिका॥ गोतमसगोत्र धरायार्धपत्तिका त्रम्मधरायार्धपत्तिः 21 कासेलायार्धपत्तिका॥शाण्डिलसगोत्रदाषायार्धपत्तिका॥लच्मण्स-B1 गोचकार्कुखपत्तिका ॥ वत्ससगोचगोपादित्याय पत्तिका विशाखाय-ार्डपत्तिका ग्रूरायार्धपत्तिका भायिखामिने वर्धपत्तिका यषग्मीर्ध-2 पत्तिका ताविशूरायपत्तिका कर्क्वस्थार्धपत्तिका ताविश्रमीं गर्धपत्ति-3 का शर्मिण र्धपत्तिका कुमारायार्धपत्तिका मन्त्रीयरायार्धपत्तिका बाटलायार्धपत्तिका च तेभ्यः सर्बेभ्यः बलिचक्वैयदेवायिहोत्रादि-4 क्रियोत्सर्पणार्थं त्राचन्द्रार्कार्णविचितिस्थितिसमकालीनः पुत्रपात्रा-

4 क्रियोत्सप्पेणार्थं त्राचन्द्राकाणेवचितिस्थितिसमकालीनः पुत्रपात्रा-न्वयभोग्यः यतस्रद्वंशिरन्यैवागामिभोगपितिभस्सामान्यभूप्रदानफले-5 प्सुभिः नलवेणुकदिलसारं संसारमुद्धिजलवीचीचपलायभोगाः प्र-बलपवनाहतायत्यपत्रचंचलां च त्रियं कुमुमितिशिरीषकुमुमसदृश-

पायं च यीवनमावलय्य त्रयमस्यहायो नुमन्तयः पालायितय्यः

7 यो वाज्ञानतिमिरपटलावृतमितराच्छियः च्छियमानं वानुमोदेत स पञ्चभिर्महापातकैस्पंयुक्त स्थात् उक्तंच भगवता वेदव्यासेन व्यासेन ।

षिटवर्षसहस्राणि स्वर्गे वसित भूमिदः। त्रुक्तेत्ताचानुमन्ताच तान्येव नरके वसेत्॥, विन्थाटवीष्वतीयासु ग्रुष्ककोटक्वासिनः। 9 क्रष्णाहयो हि जायने भूमिदयं हरिन ये॥ बज्जभिवसुधा भुक्ता राजभिः सगरादिभिः।

10 यस यस यदा भूमिः तस्र तस्र तदा फलं॥ पूर्वदत्तां दिजातिश्यो यत्नाद् रच युधिष्ठिर। महीं महिमतां श्रेष्ठ दानाच्छेयो -नुपालनं॥

11 यानीह दत्तानि पुरानरेन्द्रैः दानानि धर्म्मार्थयशस्त्रराणि। निर्वन्तमाखप्रतिमानि को नाम साधुः² पुनराददीत॥

12 संवत्सरशतचये चतुर्झवत्यधिके वैशाखपौर्णमास्यां वज्ञवासापकदू-

13 तकं <sup>3</sup> लिखितं महासन्धिविग्रहाधिक्रतेन खुद्स्वामिना ॥ संवत्सर् ३९४ वैग्राखगुदाना ॥ चित्रयमाचसिंहेणोत्कीणेति <sup>4</sup>

#### TRANSLATION.

In that royal capital, the city of victory, . . . . 5 extensive as the expanse of the sky when clear from clouds at the approach of summer, illustrious for the numerous gem-like virtues of its various men, a solace to the sorrows of kingswho sought its refuge, and, like the great ocean, intent upon the maintenance of its depth and permanence, there was in the family of the Châlukyas, who were of the Mânavya stock, sons of Hârîti, and worshippers of the feet of Swâmî Mahâsena, a king named Jaya Sinha, whose fame was purer than a lotus under the beams of the moon when it comes forth tothe sky from behind a mass of rain clouds. His son was Srî Buddha Varmma Râjâ, heroic in battle, dear as the sun, whose might . . . . who was a continuous current of prosperity, and a thunderbolt piercing the dark clouds of his powerful His son was Srî Vijaya Râjâ Sarvva, a hero unequalled in the earth, whose fame had tasted the waters of the four oceans, who was equal in dignity with Kuvera, Varuna, Indra, and Yama, a fortunate monarch who with his own arm (had

The other grants have nirbhukta.
 Here there is an upadhmūniya.
 These anuswūras are clear in the plate, though not reproduced in the lithograph.

<sup>4</sup> These words run on in the plate, but are written in rather larger letters.

5 The letters in the first line are much defaced, and the reading is consequently doubtful. Vijayapura, "the city of victory," may be a proper name. A few doubtful words occur afterwards, but as they are in the culogistic portion of the grant, they are of little or no importance.

scattered) the hosts (of his enemies), by whose great might the whole neighbouring region was subdued, in whom duty, wealth, and love1 were not inimical to each other, whose heart was bowed with the exceeding great joy . . . . who was always devoted to the cherishing of his people, who was compassionate to the poor, and . . . . who granted rewards as they were desired, and respectfully reverenced the feet of his He (Srî Vijaya Râjâ Sarvva) announces to all governors of provinces, chief men of districts, heads of villages, and others (as follows): Be it known to you that we have granted, with the pouring out of water, in the full moon of Vaisakha, for the increase of the merit and fame of ourself and our parents, to the general body of priests and students belonging to the Kanwa school of the Vâjasaneya (division of the Yajur-veda) in the town of Jambusara,2 for the performance of the Bali, Charu, Vaiswadeva, Agnihotra, and other rites, the village of Pariyachasa . . . belonging to the province of Kâşâkula, with the water-course's and all things standing thereon,3 free from all rights to forced labour for cutting and hewing . . . and into which the entrance of cheats and outcasts is interdicted, to be enjoyed for all time, as long as the sun, moon, sea, and earth shall endure, by the sons, grandsons, and descendants (of the following Brahmans): -Of the stock of Bharadwaja: Aditya Ravi, two shares; Indrasûra, a share; Tâvisûra, No. 2, half a share; Îswara, half a share; Dâma, a share: Drona, half a share; Attaswâmi, half a share; Ila, half a share; Shashthideva, half a share; Soma, half a share; Râma-ṣarmmâ, half a share; Bhâyyu, half a share; Dronadhara, half a share. Of the stock of Dhûmrâyana: Abuka, No. 2,5 half a share; Sûra, half a share. Of the DAUNDAKÎYA stock: Bhatti, a share; Samudrâ, No. 2, half a share; Drona, three shares; Tâvişarmmâ, two shares; Bhatti,

<sup>1</sup> Dharmmartha-kâma.

<sup>&</sup>lt;sup>2</sup> The modern "Jumboseer."

<sup>3</sup> See Supplementary Note.

4 The word pattikd, which I have rendered "share," is not given in the dictionaries. Has it any connection with the patti of the joint-tenancy villages in the N.W. Provinces? Prof. Hall found the word padam used for share in another grant.—See Journ. Amer. Or. Soc. vol. vi. p. 546.

<sup>5</sup> The word which is here and in other places written दिव is evidently दि. and is so written afterwards.

half a share; Vatra, a share; Drona-sarmmâ, half a share; the second Drona-sarmmâ, half a share. Of the KASYAPA stock: Vappa-swâmi, the third, a share; Durga-şarmmâ, half a share; Dattâya, half a share. Of the Kârnyana stock: Vâdâya . . . half a share; Sela, a share; Drona, a share; Soma, half a share; Sela, half a share; Vatra-sarmmâ, half a share; Bhâyi-swâmî, half a share. Of the MATHARA stock: Visâkha, a share; Dhara, a share; Nandî, a share; Kumâra, a share; Râma, a share; Pâsra, half a share; Gana, half a share; Korttuva, half a share; Bhâyivatta, half a share; Narmma, half a share; Râma-sarmınâ, half a share. Of the HARITA stock: Dharmmadhara the second, half a share. VAISHNAVA stock: Bhatti, a share. Of the GOTAMA stock: Dhara, half a share; Amma-dhara, half a share; Sela, half a share. Of the stock of SANDILA: Dûsha, half Of the stock of LAKSHMANA: Karku, a share. Of the stock of VATSA: Gopâditya, a share; Visâkha, half a share; Sûra, half a share; Bhâyiswâmî, half a share; Yasha-şarmâ, half a share; Tâvişura, a share; Karkri, half a share; Tâvi-ṣarmmâ, half a share; Ṣarma, half a share; Kumâra, half a share; Mantrîswara, half a share; Bâtala, half a share,—to all these (is the grant made). Wherefore, having reflected that the world is (as frail) as the pith of a reed, bamboo or plantain—that enjoyment is as transitory as a wave of the ocean, that fortune is as unsteady as the leaves of the holy-fig tree agitated by a strong wind, and youth like water on the flowers of the blooming mimosa-let future proprietors of our own or any other race who are desirous of reaping the rewards of gifts of land, which confer a general benefit, respect and maintain this our grant. That ignorant man, with a mind shrouded in thick masses of darkness, who shall seize it, or shall abet the seizure of it, shall be guilty of the five great sins. And it has been said by the holy Vyasa, the compiler of the Vedas:-

1. Sixty thousand years the giver of land dwells in heaven, but he who resumes or approves the resumption shall dwell the same number of years in hell.

- 2. Those who seize a grant of land are verily born (again) as black serpents dwelling in dry hollow trees in the arid forests of the Vindhya.
- 3. By Sagara and many other kings the earth has been enjoyed, and whoever at any time has possessed the earth has enjoyed its produce.
- 4. Strenuously guard, O Yudhishthira! land granted aforetime to the twice-born; for better than the gift (itself) is the conservation thereof, O best of rulers.
- 5. Gifts, productive of fame, have been granted in this world by former rulers for the sake of religion—these are like the unconsumed flowers of an offering—what honest man then would take them back again?

Written on the full moon of Vaisakha, in the year three hundred and ninety-four, under the direction of Nanna Vasapaka, by Khuddaswamî, the minister charged with the affairs of peace and war. Samvatsara 394, Vaisakha-suddha.

Engraved by Kshatriya Matṛ-sinha.

# Nos. 2, 3. The Gurjjara Grants.

[The numbers refer to the lines in Plate 2. Where the text is divided into two columns, the left column gives the version of Plate 2, the right column that of Plate 3.]

- 🗚 श्रीं खिस्त नान्दीपुरीतो । विविधविमलगुणरत्नसम्पादुङ्गासिते स
  - कलिद्झु खे परिचाता भेषसप च महा मही भृति सततमवलिङ्घतावधी
     स्थैर्थगाभी र्थ्यलाव एवतिमहा सत्वतय तिदुरवगाहे गुर्जार नृपति वं भः
  - 3 महोदधी श्रीसहजन्नाकृष्णहृदयाहितास्यदः कीसुभमणिरिव विम-स्वयशोदीधितिनिकर्विनिहतकितिमिर्निचयः सत्यचो वैनतेय
- 4 इवाक्षष्टशत्रुनागकुलसन्तित्तर्यात्तितलवदिनकर्त्तरणकमलप्रणामा-
- 5 पनीताशेषदुरितनिवहः सामन्तदत्तः प्रतिदिनमपेतशङ्कं येन स्थित-मचलगुणनिकरकेसरिविराजितवपुषा विनिहतारिगजकुश्मविगलि-
- <sup>6</sup> तमुक्ताफलाच्छलप्रकीर्णविमलयशीवितानेन रूपानुरूपं सलमुद्रहता केसरिकिशोरकेणवोपरिचितिभृतां यञ्चातिमलिनकलियुगतिमिर-
- ग चन्द्रमसमनुदिवसमन्यान्यसार्वयेव ययुः कलासमूहादयो गुणाः वि-क्रमानीतमद्विलासालसगतयो ग्रांतिगजघटाः प्रमदाश्च यस्य चा-

Both plates agree in writing this word janmâ, with the final long.
 Here I have inserted \*.

- 8 विरतदानप्रवाहप्रीणितार्त्थिमधुकरकुलस्य ६ चिरकीर्त्तवशासहाय-
- 9 स्य सततमस्विनितपदं प्रसरतः सद्दंशाहितशोभागीरवस्य भद्रमतङ्गज-स्वेवकरघातविनिहतचितिभृदुन्नततनूरुहस्य रेवानिर्ज्यरसिनन्प्रपा-
- 10 तमधुरनिनादस भगोज्जवाः समुद्रतपयोधराहितश्रियो दयिता
- 11 द्व मुदे विन्धानगोपत्यकाः यश्चोपमीयते श्रश्निसीम्यवैमन्धश्चोभा-कालाभिर्मकलङ्क्षेत्र । श्रीनिकेतश्चोभासमुद्याधः क्रतकुलकष्टकतया
- 12 कमनाकरे न पङ्कजनातया। सत्वोत्साहविक्रमैंमृगाधिराजे न क्रूरा-शयतया। नावण्यस्थैर्थगाभीर्थस्थित्यनुपाननतया महोद्धी न व्या-
- 13 लाश्रयतया । सत्कटकसमुद्गतिवद्याधरावासतया हिमाचले न ख-षपरिवारतया। यस्य च सङ्गोगः भेषोरगस्थेव विमलकिरणमणिग्र-
- 14 ताविष्कृतगीरवः सक्तजगत्साधारणो। यस्य प्रकाश्चते सत्तुलं शी-लेन। प्रभूत्वमाज्ञया। शस्त्रमारातिप्रणिपातेन। कोपो निग्रहेण। प्र-
- 15 सादः प्रदानैधम्मो देवद्विजातिगुरुजनसपर्ययेति। तस्य सूनुः प्रतप्तरु-चिर्वनकावदातः कल्पतरुरिवाविर्तमभिरुचितफलप्रदः सततम्-
- 16 तुगण्खेव वसन्तसमयो वसन्तसमयखेव प्रविकसितनिबिडचूततर्-
- 17 वनाभीगः सरस इव कमलनिवहः कमलनिवह खेव प्रबोधो महावि-षधरखेव मणिर्मणीरिव खच्छतारभावो महोदधिरिवामृतकलशो
- 18 मृतकलग्रखेवामरणदायिलप्रभावः विरण इवमदः प्रमदाजनस्वव विलासो विभवस्वेव सत्पाचिविनियोगो धर्म्मस्वेव कृतः कृतोरिव
- 19 स्वद्विणकालः प्रेम्ण इव सङ्गावः शशिन इवामलकलासमूहो नि-
- 20 यतमजङ्कारभूतः सकलनिशाकराभिक्ष्पवदनः शको वदान्यः प्रवल-रिपुवलानीकसमरसमवाप्तविजयश्रीः श्रीवीतरागापरनामा श्रीज-
- 21 यभटः कालप्रतिपचभयाक्करणार्थिन इव यमाश्रिताः सविनयागु-
- 22 णाः स्फुरितविमलकीर्त्तिसीदामणिना येन सकलजीवलोकानन्दका-रिणा कालवलाहकेनेवावन्धफलं गर्ज्जताप्रणयिनामपनीतासुष्णा-
- 23 सन्तापदोषाः यश्च भूरो -पि सततमयभोभी रूपगततृष्णो -पि गु-णार्ज्जनाविच्छित्रतर्थः सर्वेप्रदानभीलो -पि परयुवतिहृदयदानपरा-
- 24 ब्राखः पदुर्पिपरपरिवादानिधानज्रुधीः यखं च न विरोधिक्प-शीलख यौवनसद्भुत्तस्य विभवः प्रदानस्य चिवर्गसेवापरस्परापीदि-
- 25 तस्य प्रभुत्वं चान्तः कलिकाचो गुणानामिति तस्य सूनुः सजलघनप-
- 26 टलनिरर्गतर्जनिकरकरावबोधितकुमुद्धवलयशः प्रतानास्थगितो-

नभोम**ण्डलो ∗नेकसमरसंकटप्रमुखगतनि**हतश्चनुसामन्तकुलवधूप्र-

27 भातसमयरुदितच्छलोद्गीयमानविमलनिस्त्रिंगप्रतापो देवदिजाति-

28 गुरुचरणकमलप्रणामो . . . ष्टच . मणिकोटिरुचिरदीधितिविरा-जितमुक्टोब्रासितग्रीरा दीनानाथातुराभ्यागतार्त्यिजनाक्षिष्ट . . . .

20 तिवभवमनोर्थोपचीयमानिविष्टिपैकसहायधर्म्मसञ्चयः प्रण्यपरि-

30 कुपितमानिनीजनप्रणामपूर्वमधुरवचनोपपादितप्रसादप्रकाशीकत-

B1 विद्य्धनागर्काखभावो विमलगुण्किरण्पञ्जर्जिप्तबङ्गलक्ति-

2 मिर्निचयसमधिगतपञ्चमहाग्रब्दः श्रीदत्तः कृग्ली सर्वानेवराज-सामन्तभोगिकविषयपतिराष्ट्रग्राममहत्तराधिकारिकादीन्समनुवो -

3 धयत्यसु वो विदितमसाभिरकुरैयरविषयानार्गत। शिरीषपद्रक।

 4 लषग्रामः सोद्रङ्गः सोपरिकरः सर्वादानसङ्गाह्य सर्वदित्यविष्टिप्रा-तिभेदिकापरिहीणो भूमिच्छिद्रन्यायेनाचाटभटप्रावेश्वः आचन्द्रा-

र्कार्णविचितिस्थितिसमकालीनः पुत्रपीत्रान्वयभोग्यो

जम्बूसरोविनिग्गेतातुर्भेश्वरविष- जम्बूसरोव

ि यान्तर्गतिश्रिचिपद्रक्वासिवः च वत्ससगोचाश्वलायनसत्रह्मचा-रित्राह्मणभद्यध्यापक। तथा गो-पादित्य। तथा भट्टिगण। विशाख

७ । ऋषिग्रम्मं । द्रोण । काग्र्यपसगो-चमट्टिदाम । तथा वत्र । ऋष्वर्थु-वाजसनेयदीण्डकीयसगोत्र क-ण्वसब्रह्मचारित्राह्मणतापिग्रम्मं।

१ दितापिशम्मं । दत्तस्वामि । भा-गिस्वामि । पितृशम्मं । भट्टि । द्रोण । धूम्रायणसगोत्र कर्का-ध्यापक । त्रावुक । कीण्डिन्यस-

गोत्रवाटग्रम्मं। ग्रेल। घोष। म-हादेव। वाव। माथरसगोत्रधर। विशाख। नन्दि। रामिल। हा-रितसगोत्रधर्मधर। छान्दोग्य-

जम्ब्सरोवास्तव्य भारद्वाजसगोत्र-क एवस ब्रह्मचारि ब्राह्मणादि त्यरिव । तथा तापिशुर्। इन्द्रशूर। ई्य-र । तथावत्ससगीचभट्टाध्यापक । गोपादित्य। वाह। विशाख। ऋ-यिश्रमी। भट्टिगण। द्रोण। माथ-रसगोत्रविशाख। धर्। नन्दि। राम। दीएडगीसगीवतापिश्रमी। दितापिशर्मा। द्रोण। भट्टि। पि-तुश्रमी।भागिखामि।दत्तखामि। नात्माखसगोवधर। दामधर। ई-यर।कीण्डिन्यसगोचबाव।घोष । शैल । काश्यपसगीत्रभट्टिदामि । वात्र। हारीतसगोत्रधर्मधर। धी-म्रयनसगीनकर्क्कीध्यापक। त्रावुक । र्न्द्रशूरादिवाह्यणेभ्यसतुस्त्रंश-झो

1 No. 3 reads श्रीदत्तम् कुश्ली.

10 भरदाजसगोचकीयुमसब्रह्मचा-रिब्राह्मण रुद्ध्यम्मं। त्रादिव्यः-वि। तापिशूर।रुद्धशूर।ईश्वर। धर। दामधर। दिईश्वर। भर-

11 कक्क् विनिग्गेतभेर ज्ञिकानिवा -सि सुधर्मण चौलिसगोचिपप्प-लादसब्रह्मचारित्राह्मणभद्र। वा-सुश्रम्म। द्वोणखामि। रुद्वादित्य।

12 पूर्षस्वामि । एभयसतुसरणवाह्य-णभ्यसातुर्विद्यपरिकल्पनापूर्व

बलिचर्वैयदेवापिहोचपञ्चमहायज्ञादिक्रियोत्सर्प्णार्थे मातापि-

13 चोरात्मनसपुष्ययशोभिवृद्धये कार्त्तिकामुद्दकातिसर्गणातिमृष्टो य-14 तो स्सदवंश्लीर्नीर्वागामिभोगपतिभिः प्रबलपवनप्रेरितोदधिजलत-

रङ्गचञ्चलं जीवलोकमभावानुगतानसारान्विभवान्दीर्घकालखेयसञ्च

15 गुणानाकाच्य सामान्यभोगभूप्रदानफलेप्पुभिः प्रश्वितरहिचरं यश्-स्थिराय चिचीनुभिरयमस्मदायो नुमनाव्यः पालियतव्यस्य। यो वा-

16 ज्ञानितमिर्पटलावृतमितराच्छिन्बादाच्छिबमानकं वानुमोदेतस

17 पञ्चभिर्महापातकैः [सोपपातकैः] मंयुक्तः खादुक्तंचभगवता वेद्व्या-सन्यासेन

²षष्टिवर्षसहस्राणि खार्गे तिष्ठति भूमिदः। ग्राच्छेत्ता वानुमना च तान्येव नरके वसेत्॥ १८ विन्धाटवीष्वतीयासु ग्रुष्ककोटरवासिनः। कृष्णाहयो हि जायने भूमिदायं हरनि ये॥ बज्जभिर्वसुधा भुक्ता राजभिः सगरादिभि। यस्र यस्र यदा भूमिसस्र तस्र तदा फलं॥

यानीह दत्तानि पुरानरे द्वीदीनानि धर्मार्थ यश्रस्तराणि।

20 निर्भुक्तमाख्यप्रतिमानि तानि को नाम साधुःपुनराददीत॥
इति संवत्सर्भतत्रये -भीत्यधिके इति संवत्सर्भतत्रये पञ्चाभीत्यकार्त्तिकभुज्ञपञ्चद्भ्यां निखितं स- धिके कार्त्तिकपीर्णमाखां निखितं
21 न्धिनियहाधिकरणाधिकतरेवेण सन्धिनियहाधिकरणाधिकतरेवे-

2 Number 3 reads shashtim.

<sup>1</sup> The words in brackets are omitted from No. 3.

खमुखाज्ञायेति ॥ सं ३८० का- ण खमुखाज्ञायेति सं ३८५ का-र्त्तिकगुडना र्त्तिकमु..

22 दिनकरचरणार्चनरतस्य श्रीवीतरागसूनोः खहस्तो ऱ्यं प्रशान्तरा-गस्य

#### TRANSLATION.

Filled with prosperity! In that great Om! Salutation! ocean the royal race of Gurijara, a vast bathing-place of great virtue for its stability, depth, and saltness,2 whose bounds can never be passed, which cherishes the great earth and all its protected adherents, which faces every quarter of the world, and is adorned with the rich jewels of manifold brilliant virtues, (in that family there was a king named) Sâmanta-datta -by the multitudinous rays of whose brilliant fame, resembling the Kaustubha jewel placed along with Fortune on the heart of Krshna at his birth, the accumulated darkness of the Kali age was dispelled-by whom, like the good bird Vainateva,3 the progeny of the cruel families of his enemies was uprooted, and whose whole collective sin had been removed by adoration of the lotus feet of the (sin-)destroying Sun—who having a body adorned, like a lion's, with (a mane of) manifold stable virtues daily dispelled the doubt which sprung up —the bright canopy of whose fame was spread as it were with pearls fallen from the temples of his slaughtered elephantine foes4—and who, like a young lion, constantly upheld truth in its real nature over the kings of the earth. 5Like as the digits of the moon maintain a daily contest with the darkness of the tenebrous Kali age, so his assemblage of digit-like virtues, having subdued pride, desire, and indolence, kept up a continuous struggle with the elephantine troops of his pleasures. To him came swarms of loving friends, like bees, attracted by the delightful flow of his unceasing liberality. His bright renown secured the submission of men who were not his

<sup>&</sup>lt;sup>1</sup> Vagdha, n bath. The context would seem to imply some other meaning, about which the lexicons are silent.

 <sup>2</sup> Lâvanya. This word also signifies "beauty."
 3 Garuda.
 4 Alluding to the juice which exudes from the elephant's temples when in rut.
 5 This and the passages which follow are obscure, and are difficult to translate intelligibly.

adherents, and his feet were always stretched forth firmly (i.e. he was resolute in his undertakings). He was of good family, kind, beautiful, and honourable. The hair of his body stood erect with pleasure over the kings slain by his hand, destructive as the trunk of a mighty elephant. His voice was as sweet as the sound of the water falling down the cataracts of the Narmada; and his wives had beautiful high swelling breasts for his pleasure, like as the valleys of the Vindhya mountains have lofty clouds to make them agreeable.1 He was comparable with the moon in respect of its soft, pure, bright digits, but not for its spots: with the lotus from the thorniness of its tribe being blunted? by the overflowing beauty of the abode of Fortune,3 but not for its growing in mud: with the lion for excellence, energy, and prowess, not for being the abode of cruelty:-with the ocean for its maintenance of its saltness, stability, depth, and fixity, not for being the dwelling-place of ferocious animals: with the Himalayas for their having the dwellings of the proud Vidyâdharas on their fine declivities, but not for being surrounded by hilly countries.4 His excellent wealth, like that of the serpent Sesha, having its vastness displayed by hundreds of brightrayed jewels, was common to all the world. The excellence of his family was shown by his virtuous character—his supremacy by his habit of command—his military skill by defeat of his enemies—his wrath by aversion—his generosity by gifts-and his religion by reverence of the gods, brahmans, and spiritual teachers.

His son was Srî Vita Râga, otherwise named Srî Jaya Bhata, who was beautiful as hot burnished gold. Like the kalpa tree, he was the unceasing bestower of most desirable benefits. In the cycle of the seasons, he was always like the spring season; and as in the spring season is a grove of

<sup>&#</sup>x27; In this passage the word payodhara seems to be used in the double sense of "a woman's breast" and "a cloud."

<sup>&</sup>lt;sup>2</sup> Adhah-krita, "turned down."

<sup>3</sup> Şrî Lakshmî, or Fortune, is fabled to dwell in the lotus flower, especially in the red lotus which has thorns.

<sup>4</sup> This last clause is doubtful. The word in the original is khasha, which is not to be found in the dictionaries. I have read it as khasa, "a mountainous country to the north of India."

bushy mango trees in full bloom, such was he. He was like a bed of lotus flowers in a lake, and as a bed of lotus flowers was his vigilance. He was a gem as of the great serpent (Sesha), and as of a gem was his bright pure nature. He was a pot of nectar from the great ocean, and as of a pot of nectar was the undying sweetness of his disposition. concupiscence was like that of an elephant, and his amours like those of a voluptuary. His favour to the meritorious was that of magnanimity. He was as a sacrifice to his duty, and as of a sacrifice were his settled times for bestowing gifts upon Brahmans. His good nature was like that of affection. In him was an assemblage of qualities brilliant as the digits of the moon. In the use of ornaments he was moderate. His He was courteous and face was like unto the full moon. generous, and fortunate in victories obtained in battle over the hosts of his powerful enemies. The virtues seeking refuge in dread of their enemy, the Kali age, humbly resorted to him as to Yama (the god of justice). As a black rain cloud with its thunderings brings fertility and plenty, so he, by the lightning of his bright glittering fame, drove away the evils of heat and thirst from his friends. Although he was a hero, he was fearful for his surpassing fame; though his desires were extinguished, he was desirous of sharing in the acquisition of merit; though thoroughly generous in character, he was averse to bestowing the hearts of damsels upon strangers; and though eloquent, he was dull-witted in calling names and casting abuse upon opponents. In him beauty was no obstacle to good nature, nor youth to good conduct, nor wealth to liberality, nor pursuit of the tri-rarga (love. duty, and wealth) to abstinence from harm of his fellows, nor power to forbearance, nor the Kali age to all virtues.

His son was Srî Datta Kusalî, whose fame is as pure as a water-lily expanding under the rays of the moon as it emerges from a mass of rain clouds, and who is like the firmament when unconcealed by spreading clouds; whose brilliant merciless valour is unintentionally extolled by the weeping at early morn of the women of the neighbouring families of his slaughtered foes encountered in many battles; who rever-

ently bows to the lotus feet of the gods, Brahmans, and spiritual teachers; whose head is adorned with a crown shining with millions of brilliant rays emitted by charming jewels; whose heart is grieved for the poor, the sick, and the needy, who resort to him in their necessities; and who is a store of virtue, that only friend which realizes for us our hopes in heaven. In his character the astuteness of the courtier is manifested by the gentleness which he displays in soft words and respectful courtesy to women who are angry about his love. The rays of whose brilliant virtues form as it were a cage into which the thick darkness of the Kali age is cast, and who has obtained the five great titles.1 He (Sri Datta Kuşalî) announces to all Râjâs, neighbouring proprietors, governors of provinces, the chief men of districts, heads of villages, and others (as follows):-Be it known to you that we have granted, with the pouring out of water in the month of Karttika, for the increase of the merit and fame of ourself and our parents, and for the performance of the Bali, Charu, Vaiswadeva, Agnihotra, the Pancha-mahâ-vajnas (five great sacrifices), and other rites, the village of Sirîsha-padraka, a lasha-grâma2 included in the province of Akrûreswara, with the water courses3 and all things standing thereon, including every variety of income, free of any rights to forced labour for cutting and hewing, and into which the entrance of cheats and outcasts is interdicted, to be enjoyed for all time as long as the sun, moon, sea, and earth shall endure by the sons. grandsons, and descendants of the

following Brahmans who, following Brahmans who are having left the town of Jam- to dwell in the town of Jam-

<sup>&</sup>lt;sup>1</sup> Pancha-mahaṣabda. Here I follow Prof. F. E. Hall, who has a learned note upon the phrase in the Journal of the American Oriental Society, vol. vi., p. 540. He was, however, confessedly doubtful and dissatisfied, and I cannot but share his doubts, though I have no better interpretation to propose. Ṣabda, "sound, word," can hardly signify "title." Mr. W. Elliot considers the phrase equivalent to the Naubat of the present day, that is, "a band of music." (See supra, page 255.) I am inclined to believe it must mean a series of mystical words or invocations, such as cited by Prof. Hall in the note referred to.

2. This is clearly a description term not part of the name of the willows: but

<sup>&</sup>lt;sup>2</sup> This is clearly a descriptive term, not part of the name of the village; but its meaning is not discoverable.

<sup>&</sup>lt;sup>3</sup> See supplementary note at the end, upon the meanings of the technical terms employed to designate the rights conferred.

busara, dwell in the village of Sirîsha-padraka included in the district of Akrûreswara, viz., to Bhatti Adhyápaka (teacher) and to Gopâditya, Bhattijana, Vi-Agnisarmmâ, sakha. and associate Brahmans Brahmachâris of Vatsa stock and Aswalâyana school-and to Bhattidama and Vatra of the Kâsyapa Tâpi - şarmma, stock. То Tâpi-sarmma the second. Bhâgi-swâmi, Datta-swâmi, Pitri-sarmma, Bhatti, associate Drona. Brahmans and Brahmachâris of Kanwa school (of the Yajur), and of the stock of Dundaki, adhwaryyu of the Vâjasaneya (portion of the Yajur). Karkka the Adhyâpaka, and to Abuka, both of the Dhûmrâyana stock — to Vâta-Saila, Ghosha. sarmma, Mahâdeva, and Bâva, of the Kaundinya stock-to Dhara, Visâkha, Nandi, and Râmila, of the Mathara stock, and to Dharmmadhara, of the Harita stock. To Indrasarmma, Adityaravi, Tâpişura, Indraşura, Îşwara, Dhara, Dâmadhara, and Iswara the second, associate Brahmans and Brahma-

busara—to Adityaravi and to Tapisura, Indrasura Îswara, associate Brahmans and Brahmachâris of the Bhâradwâja stock and Kanwa sect - to Bhatti the Adhyapaka, and to Vâha, Visâkha, Agnisarmma, Bhattijana and Drona of the Vatsa stock-to Visâkha Dhara, Nandi, and Râma, of the Mâthara stock—to Tapişarmmâ, Tâpişarmma the Second, Drona, Bhatti, Pitr-Bhâgiswâmi, sarmma, Drattaswâmi, of the Daundakî stock—to Dhara, Dâmadhara, and Iswara, of the Lakshmanya stock-to Bâva, Ghosha, and Saila, of the Kaundinya stock-to Bhattidâmi and Vatra, of the Kâsyapa stock — to Dharmmadhara, of the Harita stockand to the Adhyapaka Karkka and to Abuka and Indrasura, of the Dhaumrayana To these thirty-four stock. Brahmans (is the village granted).

<sup>&</sup>lt;sup>1</sup> The modern Jambosir or Jumboseer.

châris of the Chhândogya Bhâradwâja stock and of the Kauthuma school (of the Sâma-veda). Also to the following residents of Bherajjikå who have retired from Bharukachchha,1 viz., to Bhadra, Vâsusarmma, Dronaswâmi, Rudrâditya, and Pûrnaswâmi, associate Brahmans and Brahmachâris of the Sudharmmana-chaulisa stock, and of the Pippalâda school (of the Atharva-veda.) To Brahmans of these four schools is the village granted with the especial object of promoting the study of the four Vedas.2

Wherefore having reflected that this world is as unstable as a wave of the ocean driven by a powerful wind, that riches have no lasting existence, but pass away and are worthless, whilst virtues endure for a long time, let future proprietors3 of our own or any other race, who are desirous of reaping the rewards of gifts of land which confer a general benefit, and who wish to gather for themselves a long-enduring fame, bright as the rays of the moon, respect and preserve this our That ignorant man, with a mind shrouded in thick masses of darkness, who shall seize it, or shall abet the seizure of it, shall be guilty of the five great crimes (and the minor sins).4 And it has been said by the holy Vyasa, the compiler of the Vedas.

Bronen r

So I understand the passage "Ebhyas chatus-charana-brahmanebhyas châtursidyâ-parikalpanâ pûrvvam." The word charana evidently signifies in this place
a school or sect of Vedic learning. The four schools specified are those of Âşwalâyana for the Rig, Kanwa for the Vâjasaneyi or White Yajush, Kuthnmi for the
Sâman, and Pippalâda for the Atharvan. The Sâman is further marked by the
Brahmans being of the Chhândogya Bhâradwâja stock, i.e. of the stock of the
Chhandoga or Sâma-veda Bharadwâja, as distinguished from the more celebrated
Pharadwâja of the Birayada 

(Admonitory verses: same as 1, 2, 3, and 5 in Grant No. 1.)

Written on the fifteenth of Kårttika-suddha, in the Samvatsara three hundred and eighty, by Reva, the minister charged with the affairs of peace and war, under the (King's) own order. Sam. 380, Kârttika suddha.

Written on the full moon of Kârttika in the Samvatsara three hundred and eightyfive, by Reva, the minister charged with the affairs of peace and war under the (King's) own order. 385, Kârttika-su . . .

This is the autograph of Praşânta-râga, son of Vîta-râga, devoted to the worship of the Sun.

## SUPPLEMENTARY NOTE.

The legal terms employed in grants of land by conveyancers to express the privileges bestowed, and, perhaps, also, the limitations imposed on the grantees, have not received the attention they deserve. Prinsep long ago in some disparaging words remarked upon their obscurity.1 For many of them the dictionaries afford no assistance. Prof. F. E. Hall, in his notes upon the grants of King Hastin,2 has lately called attention to some of these terms, and has laudably endeavoured to throw some light upon their meaning; but he says, "there is something of experiment in the meanings attached." terms used in the three grants before us are with one exception Sodranga: Soparikara: Sarvadanasan grahya: Sarvadityavishtipratibhedikaparihina: Bhumichhidranyayena: Achatabhataprdvesya.

The terms Sodranga and Soparikara are generally found together. I have never met with Sodranga alone, but Soparikara is occasionally found without its companion. Colebrooke rendered Soparikara as "superior taxes;" and Colonel G. Le Grand Jacob as "all the produce of the village granted."4 The two terms in conjunction have been very variously rendered. In Wathen's Grant<sup>5</sup> they are translated as "the hamlets and other things pertaining to the village." Ball G. Shastree translates them as "public buildings and appurtenances." In some other instances of their employment the translations are too vague and loose to admit of the original terms and the

Journ. Beng. A. S. vol. v. p. 728.
 Trans. A. S. vol i. p. 465.
 Journ. Beng. A. S. vol. iv. p. 477.

<sup>Ibid. 1861, p. 9.
Journ. Bom. R. A. S. vol. iv. p. 105.
Journ. Bom. R. A. S. vol. ii. p. 5.</sup> 

translations being identified. Prof. F. E. Hall says,1 "I have ventured a guess as to the meaning of Soparikara, which I am unable to recall, in a paper not by me at this moment. The first (Sodranga) may define the village under alienation vertically to the mid-air." The guess as to the meaning of Soparikara has not met the eye of the writer of these notes—the meaning suggested for Sodranga is evidently founded on the signification commonly attached to the word udranga, "an imaginary city, one floating in mid-air." It is true that grants occasionally convey the land with all that is above it to akasa or the sky, and below it to patala the infernal regions; but this supposed reference to the mythic aerial city of king Harischandra is, as its proposer felt, very unsatisfactory. The interpretations which I am about to offer may be equally unconvincing, but they, at least, bring us down to things terrestrial. Udranga<sup>2</sup> I take to be a derivative from udra, "water," and uparikara, a formation from upari, "above, upon." As such they may be the ancient representatives of the technical terms jalkar and bankar, "rights over water and wood," which constantly appear in modern deeds of conveyance and agreements for the occupation of land. There is one apparent objection to this interpretation, which is, that the term soparikara is occasionally used even when the trees are distinctly conveyed by other words; thus, "Savykshamalakula soparikara." This, however, must not be looked upon as an insuperable objection to the proposed interpretation, for the grant following the one last referred to 4 has the following "trnakdshthodakopetah savrkshamdlâkulah," where the kâshtha (wood) is conveyed by one phrase and the vrksha (trees) by the following one.

The meaning of the next term, Sarvadánasangráhya, is "inclusive of all receipts" or sources of revenue, and this presents no difficulty.

The phrase Sarradityavishtipratibhedika parihina is less common; indeed, I have not met with it elsewhere. Vishti, "forced labour, corvee," is common enough. The words ditya and pratibhedika are not given in the dictionaries, but their derivation is manifest, and points to some connection with "cutting and hewing." the root di, signifies "cutting, splitting;" and prdtibhedikd is a derivative of the common root bhid, to "break, tear." The exact signification of the phrase is not apparent, but there can be no doubt

<sup>&</sup>lt;sup>1</sup> Journ. Beng. R. A. S. 1861, p. 9.
<sup>2</sup> In Grant No. 1 the word is written sodraga, but the masal is too regularly inserted in other places to allow of this being deemed other than an error.

Trans. R. A. S. vol. i. p. 465. Journal, vol. v. p. 176. Grant No. 8, 4 Ibid. Grant No. 9. See also Journ. Amer. Or. Soc. vol. vi. p. 543.

of its general import. The last word I read parihina "exclusive." for it can hardly be aparihina, "not exclusive." Taking the phrase in the general sense proposed, it is still susceptible of two different applications. It may declare the exemption of the tenure from all liability to forced labour for cutting or hewing; or, on the other hand, it may be a limitation or bar upon the grantees against exacting such labour from the inhabitants.

The next term, Bhûmichhidranydyena, is the most puzzling of all. The meaning of the words forming the compound is obvious enough: but what the whole signifies, or how it is to be taken as an instrumental case, is by no means clear. The phrase is found in other places and in different combinations. In Wathen's Grant we have samastarájakíyanam ahastaprekshaníyam bhûmichhidranyáyena isham eva cha; and in the Samangarh plate we find bhûyachchhidranyayena udaka pûrvvo dattah.2 Thus, in each instance, the words in immediate conjunction with the phrase are different, so that it would seem to have a distinct independent meaning of its own, and not to be connected with the form of words accompanying it. No attempt has hitherto been made to assign any meaning to the phrase, and I am forced to content myself with bringing together these instances of its use as a help to future inquirers.

The last phrase, achdtabhatapravesya, is one that occurs very fre-The last word is frequently written pravesya. This phrase has generally been considered to relate to the passage or billeting of Wilkins, in the first volume of the Asiatic Researches, appears to render it, "there shall be no passage for troops." Ball G. Shastree, amending a former translation of the phrase, says, "I have been satisfied that it means 'the village is not to be entered into by the troops and followers of the king." 3 Professor Hall translates it, "exempt from the ingress of fortune tellers and soldiers," referring to Colebrooke's Digest for the meaning assigned to chata,4 and he repeats this rendering in another grant subsequently published. There is a similar phrase in the Sconi grant. abhatachchhatrapravesya, which is rendered "free from military billeting." Notwithstanding this concurrence and weight of opinion, the rendering seems to me unsatisfactory. The meaning of châta is cheat,

Journ. Beng. A. S. vol. v. p. 477.
 Journ. Bom. R. A. S. vol. ii. p. 371. The composition of this grant, as also the reproduction and transcription, all appear to be very faulty. The transcription gives δλάμα, but the fac-simile may be read δλάma. There can be no doubt that bhûmi was intended.

<sup>&</sup>lt;sup>3</sup> Journ. Bom, R. A. S. vol. ii. p. 5. 4 Journ. Amer. Or. Soc. vol. vi. p. 541.

Journ. Beng. A. S. 1861, p. 9. 6 Ibid., vol. v. p. 728.

rogue, peculator, or, as above, a fortune teller; and that the word is to be taken in a disreputable sense is clear from a grant in the Bombay Journal, where the phrase runs achdtabhata kusidddinam apravesya, the meaning of kustda being "money lender or usurer." The meanings usually attached to bhata are "warrior, soldier, barbarian, outcast of a particular tribe." Now it seems incredible that the troops of the king should be associated with and placed in the same category with cheats (or fortune tellers) and usurers. the phrase is certainly used in a base sense; a similar meaning ought therefore to be given to bhata if the word will bear it, and its signification of "outcast, barbarian," seems quite in accordance with its associates. Taking this view, then, the village is to be free from the entry of cheats and outcasts; but is this a privilege conferred by the grantor or a duty imposed upon the grantee? It is difficult to conceive that a king should profess to grant such an immunity in perpetuity; while the imposition of such a restriction on the grantees would be for the general benefit of society, and a very proper provision. There can be no doubt that the majority of these conveyancing terms denote privileges conferred; but we have seen that a former one may possibly be taken as a limitation or restriction upon the grantees. If conclusive reason is found for considering any of the terms to express restrictions I should be disposed to class this last one among them.

<sup>1</sup> Grant No. 1. Vol. ii.